आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

प्रधान सम्पादिका

डॉ. मनीषा शुक्ला,maneeshashukla76@rediffmail.com

पुनर्निरीक्षक संपादक

प्रो. विभा रानी दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उ.प्र.,भारत

डॉ. नागेन्द्र नारायण मिश्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद,उ.प्र.,भारत

प्रो. उमेश चंद्र दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उ. प्र.,भारत

सम्पादक

डॉ. महेन्द्र शुक्ल, डॉ. अंशुमाला मिश्रा

सम्पादक मण्डल

डॉ. सपना भारती, डॉ. भावना गुप्ता, डॉ. राजेश, डॉ. रेनू कुमारी, डॉ. निशी रानी, डॉ. संगीता जैन, डॉ. आरती बंसल, डॉ. कला जोशी, डॉ. सुनीता त्रिपाठी, डॉ. रानी सिंह, डॉ. स्वीटी बंदोपाध्याय, डॉ. अर्चना शर्मा, डॉ. पिन्टू कुमार, मधुलिका सिन्हा, डॉ. मधुलिका, डॉ. नीलू कुमारी, डॉ. मनीषा आमटे, डॉ. सुषमा पराशर, डॉ. सिद्धार्थ पाण्डेय, डॉ. मनोज कुमार राय, आशा मीणा, तन्मय चटर्जी, अनीता वर्मा, अनन्द रघुवंशी, नंद किशोर, रेनू चौधरी, श्याम किशोर, विमलेश कुमार सिंह, अखिलेश रध्वज सिंह, दिनेश मीणा, गुंजन, विनीत सिंह, नीलमणि त्रिपाठी, अंजू बाला, ब्रजेश कुमार, डॉ. इन्दुमती सिंह, रमेश चन्द

अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार मण्डल

रेव डोडामगोडा सुमनासार (श्रीलंका), वेन केन्डागेले सुमनारांसी थेरो (श्रीलंका), रेव टी धम्मारतना (श्रीलंका), पी.त्रिराची सोडामा (श्रीलंका), फ्रा च्युतिदेश सैन्सोम्बट (बैंकाक,थाईलैंड), फ्रा बूनसर्मस्त्रिथा (थाईलैंड), डॉ. सीताराम बहादुर थापा (नेपाल), मोहम्मद सौरजाई (जाबोल, ईरान), माजिद करीमजादेह (ईराक), डॉ. अहमद रेजा केईखाय फरजानेह (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद जारेई (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद मोजटाबा केयाहफरजानेह (जाहेडान, ईरान), डॉ. होसैन जेनाबदी (सिस्तान एवं बलूचिस्तान, ईरान), मोहम्मद जावेद केयाह फरजानेह (जाबोल, ईरान)

प्रबन्धक

महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

सारांश एवं सूचीपत्र

मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र दिल्ली, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका सूचीपत्र वाराणसी, सेन्ट्रल न्यूज एजेंसी सूचीपत्र दिल्ली, डी.के.पब्लिकेशन सूचीपत्र दिल्ली, नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंस कम्यूनिकेशन एण्ड इन्फारमेशन रिसोर्स सूचीपत्र दिल्ली, नोएडा कॉलेज ऑफ फिज़िकल एजुकेशन सूचीपत्र गौतमबुद्ध नगर

पाठकों से

आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका प्रत्येक दो माह (जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, सितम्बर एवं नवम्बर) पर एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण वाराणसी उ.प्र. भारत द्वारा प्रकाशित की जाती है। एक वर्ष में आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका 6 भाग हिन्दी एवं 6 भाग अंग्रेजी एवं 3 अतिरिक्तांकों के भाग में प्रकाशित की जाती है। डॉक खर्च दर के सम्बन्ध में जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

वार्षिक पाठक मूल्य दर

संस्थागत एवं व्यक्तिगत : भारतीय 5000+1000/-डाक शुल्क, एक प्रति 1200+100/- डाक शुल्क, वैदेशिक : 6000+डाक खर्च, एक प्रति 1000+डाक शुल्क

विज्ञापन एवं निवेदन

विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रधान सम्पादिका के पते पर संपर्क करें। आन्वीक्षिकी एक स्ववित्तपोषित पत्रिका है,अत: किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा। कृपया अपनी सहयोग राशि चेक अथवा ड्राफ्ट के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें।

सभी पत्राचार निम्नलिखित पते पर ही प्रेषित करें-

बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया,लंका वाराणसी उ.प्र. भारत,पिन कोड 221005 मोबाइल नं. 09935784387,

टेलीफोन नं. 0542-2310539.,E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com,www.anvikshikijournal.com

मिलने का समय : 3-5 दिन में(रविवार अवकाश)

पत्रिका संयोजन : महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

प्रकाशन :एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण

प्रकाशन तिथि : 1 नवम्बर 2014

मनीषा प्रकाशन

(पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/ 2007-2008 बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया, लंका वाराणसी उ.प्र. भारत)

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

वर्ष-8 अंक-6 नवम्बर-2014

शोध प्रपत्र

कुछ प्रमुख उपनिषदों में स्त्री विमर्श -डॉ. मनीषा शुक्ला 1-5
वैदिक साहित्य में जीवन मृत्यु की सत्यता -डॉ. स्मिता द्विवेदी 6-7

पृथ्वी सूक्त : वनस्पति और औषधियों का स्रोत -डॉ. स्मिता श्रीवास्तव 8-10
"आशाशिशु" उपन्यास की कथावस्तु की समीक्षा -सरोज बाला 11-15

परिवर्तन की प्रक्रिया क्रियान्वयन का उपाय -डॉ. संगीता जैन 16-19
हिन्दी भाषा का विकास -पूनम रानी 20-25

गोंडी बोली के लोकगीतों में रामकथा संदर्भ -डॉ. कला जोशी 26-30
नयी कहानी और कमलेश्वर -डॉ. अनुराग त्रिपाठी 31-34

डॉ. सूर्यनारायण द्विवेदी के उपन्यासों में पौराणिकता -सरोज बाला 39-42
ऊर्जा के नये स्रोत परमाणविक नहीं, प्राकृतिक होंगे -डॉ. अंजली श्रीवास्तव 47-49

सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 का विभिन्न शासकीय विभागों में प्रभाव का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 54-57
-डॉ. प्रमोद यादव एवं भूपेन्द्र कुमार

प्रिंट ISSN 0973-9777, वेबसाइट ISSN 0973-9777

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) 8,1-5
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 22 सितम्बर 2014

कुछ प्रमुख उपनिषदों में स्त्री विमर्श

डॉ. मनीषा शुक्ला*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *कुछ प्रमुख उपनिषदों में स्त्री विमर्श* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मनीषा शुक्ला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

अमृतनादोपनिषद् में कुल 39 मंत्र हैं एवं इन मंत्रों के अन्तर्गत श्रेष्ठ योगी अथवा साधक अर्थात् साधना करनेवाला स्त्री या पुरूष को उपनिषद् का रहस्य बताया गया है। ज्ञानी स्त्री अथवा पुरूष का कर्तव्य है कि वह शास्त्र अध्ययन करे एवं उसका बार बार अभ्यास करे। विद्युत की क्रान्ति के समान क्षण भंगुर जीवन को आलस्य प्रमाद में नष्ट न करे, अपितु ब्रह्मविद्या ज्ञान की प्राप्ति करे- *शास्त्राण्यधीत्य मेधावी अभ्यस्य च पुनः पुनः। परमं ब्रह्म विज्ञाय उल्कावत्तान्यथोत्सृजेत्।।1।।*

स्त्री अथवा पुरूष उँकार का चिन्तन करते हुये ज्ञानी पुरूष रूद्र की उपासना में मगन रहे क्योंकि उँकार पर आरोपित प्राण परब्रह्म तक पहुँच सकता है।

प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क तथा समाधि इन छः अंगों से युक्त साधना योग कहलाती है (और उसका अनुपालक साधक कहलाता है)- *प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोऽथ धारणा। तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते।।6।।*

समस्त इन्द्रियों द्वारा किये गये दोषों का शमन प्राणायाम के माध्यम से ही सम्भव है- *यथा पर्वतधातूनां दह्यन्ते धूमेनान्मलाः। तथेन्द्रियकृता दोषा दह्यन्ते प्राणधारणात्।।7।।*

इस उपनिषद् में प्राणायाम करने की पूरी विधि वर्णित है साथ ही *पूरक, कुम्भक रेचक* की भी व्याख्या की गई है। इस उपनिषद् के अन्तर्गत सच्चे साधक (स्त्री अथवा पुरूष) को परिभाषित किया गया है। जिस भांति अन्धे को कुछ भी दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार साधक नाम रूपात्मक अन्य कुछ भी न देखे। शब्द को *बहरे* की भांति श्रवण करे और शरीर को काठ की भांति जाने तभी वह प्रशान्त हो सकता है- *अन्धवत्पश्य रूपाणि शब्दं बधिरवच्छृणु। काष्ठवत्पश्य वै देहं प्रशान्तस्येति लक्षणम्।।15।।* इस उपनिषद् के अन्तर्गत धारणा की स्थिति, तर्क, ऊँकार, (प्रणव), समाधि, कैवल्य, वायु आदि को परिभाषित भी किया गया है। अन्त में कहा गया है- *यस्येदं मण्डलं भित्वा मारूतो याति मूर्धनि/ यत्र कुत्र म्रियेद्वापि न स भूयोऽ-भिजायते/ न स भूयोऽभिजायेत इत्युपनिषत्।।39।।* अर्थात् जिस श्रेष्ठ योगी अथवा

* प्रधान सम्पादिका, अन्वीक्षिकी पत्रिका, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

साधक (स्त्री-पुरूष) का प्राण इस मण्डल (पच्चत्त्वात्मक शरीर-क्षेत्र, वायु स्थान एवं हृदय प्रदेश) का बेधन कर मस्तिष्क के क्षेत्र में प्रविष्ट कर जाता है, वह अपने शरीर का जहाँ कहीं भी परित्याग करे, पुनः जन्म नहीं लेता अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है, यही उपनिषद् (रहस्य) है।

यह उपनिषद् (अमृतनादोपनिषद्) कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध है। इस उपनिषद् का प्रतिपाद्य विषय योग साधक है। योग साधक को भय, क्रोध आदि से मुक्त संतुलित जीवन जीने की शिक्षा दी गई है फलतः ब्रह्म निर्वाण की उपलब्धि भी बताई गयी है।

ईशावास्योपनिषद् के अन्तर्गत 18 मंत्र है। यजुर्वेद का 40वाँ अध्याय ही ईशावास्योपनिषद् के नाम से जाना गया है। इस सृष्टि में जो कुछ भी जड़ या चेतन है, वह सब ईश द्वारा आवृत-आच्छादित है। हमें ईश्वर द्वारा सौपे गये, का ही उपभोग करना चाहिये। अधिक का लालच नहीं करना चाहिये। हमारे आस-पास जो कुछ भी धन-द्रव्य है यह सब उसी विराट् ईश्वर का ही है- *ऊँ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुंजिथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।1।।*

साथ ही हमें कर्म करते हुये सौ वर्ष की पूर्णायु जीने की कमाना करनी चाहिये। कर्म मनुष्य को लिप्त नहीं करते, हमें विकार मुक्त जीवन जीने का संकल्प लेना चाहिये। इस संसार में अनुशासनों का उल्लंघन करने वाले जन *असुर्य* हैं वे जीवन भर अज्ञान से घिरे रहते हैं वे आत्मा का हनन करने वाले लोग शरीर छूटने पर *प्रेत* रूप में अंधकार युक्त लोकों में जाते हैं।

हमें याद रखना चाहिये ईश्वर ही सर्वशक्तिमान है, वेगवान है, स्फूर्तिवान है। ईश्वर के अन्तर्गत अनुशासन में रहकर गतिशील वायु-अप् (सृष्टि के मूल घटक) को धारण किये रहता है। जब व्यक्ति जड़ चेतन सृष्टि को आत्मतत्व में स्थित अनुभव करता है तब वह भ्रमित नहीं होता है। आत्म तत्व ही समस्त भूतों के रूप में प्रगट हुआ है अतः मोह शोक व्यर्थ है। विद्या, अविद्या का प्रभाव भिन्न-भिन्न है। अविद्या द्वारा मृत्यु को पार करके विद्या द्वारा अमरत्व की प्राप्ति की जाती है। यह जीवन पंचभूतों एवं आत्मचेतना से निर्मित है। शरीर तो भस्म हो जायेगा अतः हमें परमात्मा के स्मरण का संकल्प लेना चाहिये, हमें साथ ही अपने किये कर्मों का भी बार बार स्मरण करना चाहिये। हमें ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये कि वे हमें श्रेष्ठ मार्ग से ऐश्वर्य की ओर अग्रसर करे साथ ही हमें कुटिल पाप कर्मों से बचाये- *अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव/ वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां/ ते नम उक्तिं विधेम।।18।।*

एकाक्षरोपनिषद् में ईश्वर के अक्षर (शाश्वत) स्वरूप की चर्चा की गई है। ईश्वर को विश्व के कारणरूप, प्राणिमात्र के स्वामी, पुराण पुरूष के रूप में स्वीकृति मिली है। ईश्वर ही एकमात्र विराट् और पूर्ण पुरूष है। ईश्वर ही प्राणस्वरूप सर्वत्र व्याप्त है। इस उपनिषद् के एक मंत्र में ईश्वर को परिभाषित करते हुये कहा गया है कि हे ईश्वर! आप ही स्त्री हैं, कुमारी हैं एवं कुमार भी- *त्वं स्त्री पुमांस्त्वं च कुमार एकस्त्वं वै/ कुमारी ह्यथ भूस्त्वमेव। त्वमेव धाता वरूणश्च राजा त्वं/ वत्सरोऽ-ग्न्यर्यम एव सर्वम्।।* अर्थात् हे परमात्मा आप अकेले ही स्त्री, पुरूष, कुमार एवं कुमारी हैं। आप ही पृथिवी हैं। आप ही धाता, वरूण, सम्राट, संवत्सर, अग्नि और अर्यमा (सूर्य) हैं। आप ही सबकुछ हैं।

ऐतरेयोपनिषद् में कुल तीन अध्याय हैं। मुख्यरूप से देखा जाय तो इस उपनिषद् में स्त्री विषयक आख्यान आया है। यहाँ माता के गर्भ में जीव प्रवेश उसका प्रथम जन्म, बालक रूप में बाहर आना; द्वितीय जन्म तथा मरणोपरान्त अन्य योनियों में जाना; तीसरा जन्म कहा गया है।

इस उपनिषद् के प्रथम अध्याय में ब्रह्म से लोकों, लोकपालों सहित मानवी सृष्टि, उसके विकास तथा मोक्ष सहित विराट् जीवन चक्र का उल्लेख है। इसके प्रथम मंत्र में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया गया है कि सृष्टि के आरम्भ में एकमात्र आत्मा ही था वही सब कुछ था अतः उसने निश्चय किया कि *मैं* लोकों का सृजन करूँ- *आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्ना-न्यत्किच्चन् मिषत्। स ईक्षतलोकान्नु सृजा इति।।1.1।।* उस परमात्मा ने ही अम्भ, मरीचि, मर और आपः लोकों का सृजन किया।

द्वितीय खण्ड; परमेश्वर ने सर्वप्रथम गो, तदुपरान्त अश्व फिर मानव शरीर की रचना की।

तृतीय खण्ड; ईश्वर ने क्षुधा तथा पिपासा से तृप्ति हेतु अन्न भी बनाया। इस उपनिषद् में देह को परमात्मा का आवास बताया गया है।

ऐतरेयोपनिषद् के द्वितीय अध्याय के प्रथम खण्ड में जीव के पुरूष के शरीर में गर्भरूप में विद्यमान होने की बात की गई है। कहा गया कि पुरूष के शरीर में स्थित वीर्य पुरूष के समस्त अङ्गों से उत्पन्न तेज है। पुरूष आत्मस्थ तेज को अपने ही अन्दर पोषित करता है, तदुपरान्त वह इस वीर्यरूपी तेज को स्त्री में सींचता हुआ गर्भरूप को प्राप्त कराता है, यही जीव का प्रथम जन्म है- *पुरूषे ह वा अयमादितां गर्भो भवति। यदेतद्रेतरतदंतत्सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः संभूतमात्मन्येवात्मानं बिभर्ति तद्यदा स्त्रियाँ सिंचत्यथैनज्जनयति तदस्य प्रथमं जन्म।।1।।*

माना गया कि स्त्री का शरीर पुरूष वीर्य से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। पुरूष वीर्य स्त्री को किसी प्रकार कष्ट नहीं पहुँचाता है। स्त्री अपने उदर में पति के वीर्य रूपी आत्मा को पोषित करती है। स्त्री को पालन कर्त्री स्त्री एवं पालनीया भी कहा गया। गर्भयुक्त नारी शिशु को जन्म देने के पहले शिशु का उदर में पालन करती है एवं नर (पिता) जन्मोपरान्त सबसे पहले जातकर्म आदि संस्कार से उस बालजीव को सुसंस्कृत करता है। पुरूष बालक को सुसंस्कृत करके वास्तव में अपना ही उन्नयन करता है। यही जीव का द्वितीय जन्म है।

पिता का यह पुत्रस्वरूप आत्मा पुण्यों के लिये पिता के प्रतिनिधि के रूप में होता है एवं वृद्धावस्था पर्यन्त कर्तव्य पथ पर रत रहकर इस लोक से जाता है। तदुपरान्त उसका फिर जन्म होता है। यह इस जीव का तीसरा जन्म है। उपर्युक्त बातों के संदर्भ में ऋषि वामदेव अपने अनुभव को बताते हुये करते हैं कि उन्होंने गर्भ में रहकर ही देवताओं के जन्मों का रहस्य विधिवत् ज्ञात कर लिया था। ऋषिवामदेव तत्वज्ञान से अमृततत्व को प्राप्त हो गये।

ऐतरेयोपनिषद् के तृतीय अध्याय के खण्ड-1 में भी आत्मा विश्लेषण का विषय बना। माना गया कि प्रज्ञान में ही सभी लोक आश्रित हैं। प्रज्ञा ही उनका विलय स्थान है, अतः प्रज्ञान ही ब्रह्म है ऐसा स्वीकृत किया गया- *प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म।*

इस ज्ञान को जाननेवाला ज्ञानी ही अमर है।

कठोपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद की कठशाखा पर आधारित है। इसके अन्तर्गत दो अध्याय एवं प्रत्येक अध्याय में तीन वल्ली है। यह उपनिषद् वाजश्रवा के पुत्र नचिकेता एवं यम के मध्य हुये वैचारिक आख्यान पर आधारित है। नचिकेता के पिता ने यज्ञ के दान स्वरूप बेकार, एवं उपयोगरहित वस्तुओं का चयन किया इस पर नचिकेता ने पिता से पूछा मुझे किसे देंगे- *स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति। द्वितीयं तृतीयं त होवाच मृत्यवे त्वाददामीति।।4।।*

वाजश्रवा के द्वारा क्रोध में किये गये संकल्प का पालन नचिकेता ने किया। नचिकेता जब यम के समक्ष उपस्थित होते हैं तब वे उन्हें अपनी प्रभावपूर्ण वाणी से मोहित कर लेते हैं। यम उन्हें प्रसन्न होकर तीन वर मांगने को कहते हैं। प्रथम वरदान में यमराज उन्हें पिता की अनुकूलता, द्वितीय में अग्नि विद्या और तृतीय में आत्मविद्या का ज्ञान देते हैं। कठोपनिषद् का समस्त आख्यान इन्हीं उपर्युक्त बिन्दुओं पर आधारित है। कठोपनिषद् में अध्याय एक प्रथम वल्ली मंत्र 6 में वर्णित है- *वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्। तस्यैतां शान्ति कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम्।।6।।* अर्थात् जब पुत्र के वचन से सहमत बाजश्रवा ने नचिकेता को यम के पास भेजा, तब यम वहाँ उपस्थित न थे। अतः नचिकेता प्रतीक्षा में वहीं रूक गये। जब यम वापस आये तब उनकी पत्नी ने कहा, ''वैश्वानर अग्नि ही ब्राह्मण अतिथि रूप में घरों में प्रविष्ट होते हैं सम्भ्रान्त लोग उनका अर्घ्य-पाद्यादि द्वारा सत्कार करते हैं। अतः आप अर्घ्य हेतु जल प्रदान करें। आगे के श्लोक में यम पत्नी कहती हैं- *आशाप्रतीक्षे सङ्गतँसूनृता चेष्टापूर्ते पुत्रपशूँश्चसर्वान्/ एतद्वृङ्के पुरूषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन्वसति ब्राह्मणो गृहे।।8।।* अर्थात् जिनके घर में ब्राह्मण-अतिथि भोजन किये बिना निवास करता है, उस मन्दबुद्धि पुरूष की आशा (अज्ञात इष्टार्थ की प्राप्ति अभिलाषा), प्रतीक्षा (निश्चित इष्टार्थ की प्राप्ति प्रतीक्षा) को, उनके संयोग से उपलब्ध होने वाले फल को, कूपादि निर्माणजन्य फल को तथा समस्त पुत्र और पशु को (आतिथ्य सत्कार से रहित),अतिथि नष्ट कर देता है।

यम द्वारा तीन वरदानों के आश्वासन पर जब नचिकेता तृतीय वर के रूप में आत्म रहस्य जानना चाहा तब यम ने कहा- *ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामाँश्छन्दता प्रार्थयस्व। इमा रामाः साथाः सतूर्या न ही दृशा लम्भनीया मनुष्यैः।। आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्वनचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः।।1.1.25।।* अर्थात् हे नचिकेता! मर्त्यलोक में जो दुर्लभ पदार्थ है, उन सभी को तुम स्वेच्छापूर्वक मांग लो। रथ और कर्णप्रिय वाद्य विशेषों से युक्त इन स्वर्ग की अप्सराओं को प्राप्त कर लो, मनुष्यों द्वारा इस प्रकार की स्त्रियाँ प्राप्त करना संभव नहीं है। हमारे द्वारा प्रदत्त इन रमणियों से आप अपनी सेवा शुश्रूषा

करायें, किन्तु हे नचिकेता! मृत्यु के पश्चात् आत्मा का क्या होता है ? यह हमसे न पूछें। नचिकेता ने कहा- *श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः। अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते।। 1.1.26।।* अर्थात् रथादि वाहन एवं अप्सराओं के नाचगाने की मुझे कोई कामना नहीं, ऐसा नचिकेता ने यम से कहा।

पुनः *अजीर्यताममृतानामुपेत्य जीर्यन्मर्त्यः क्वधः स्थः प्रजानन्। अभिध्यायन्वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घे जीविते को रमेत्।। 1.1.28।।* अर्थात् हे यमदेव! अप्सराओं के सौन्दर्य, प्रेम तथा आमोद प्रमोदजन्य क्षणभंगुर सुख की मैं अभिलाषा नहीं करता। अतः आत्मरहस्य विषयक वर के अतिरिक्त अन्य किसी वर की कामना नचिकेता को नहीं थी। यहीं पर कठोपनिषद् का प्रथम अध्याय प्रथम वल्ली 29 मंत्रों के साथ समाप्त होता है।

कठोपनिषद् के द्वितीय वल्ली में यमराज नचिकेता को श्रेयस-प्रेयस मार्ग को संदर्भ में अवगत कराते हैं। यम नचिकेता को ऊँकार का रहस्य भी बताते हैं। वे कहते हैं- ये ऊँकार परब्रह्म अर्थात् सर्वोत्तम है। यह प्रणव ही आत्म साक्षात्कार का श्रेष्ठ अवलम्बन है- *एतदालम्बनँ श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्। एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते।।1.2.16।।*

कठोपनिषद् के प्रथम अध्याय के तृतीय वल्ली में यम नचिकेता से विवेकी पुरूष की चर्चा करते हैं। कठोपनिषद् के द्वितीय अध्याय की प्रथम वल्ली में भी विवेकी पुरूष एवं ब्रह्म की चर्चा है। यम कहते हैं कि- *या प्राणेन संभवत्यदिति-र्देवतामयी। गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजायत, एतद्वै तत्।। 2.1.7।।* अर्थात् देव क्षमता सम्पन्न अदिति देवमाता, जो सर्वप्रथम प्राणों सहित उत्पन्न होती है, वह सभी की हृदय गुहा में प्रविष्ट होकर वहीं निवास करती है। यही वह ब्रह्म है।

आगे के मंत्र में यम कहते हैं- *अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः। दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भि-र्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः एतद्वै तत्।। 2.1.8।।* अर्थात् जिस प्रकार गर्भवती स्त्रियों द्वारा विधिवत् पोषित गर्भधारण किया जाता है, उसी प्रकार जातवेदा अग्नि दो अरणियों के मध्य स्थित रहता है। वह प्रज्ज्वलित होकर, हवन करने योग्य सामग्रियों से युक्त पुरूषों द्वारा प्रतिदिन स्तुत्य होता है। यही वह ब्रह्म है

कठोपनिषद् अध्याय 2 वल्ली 2 में भी परब्रह्म की चर्चा है। एवं तृतीय वल्ली में भी ब्रह्म का विस्तार से चर्चा की गयी है। शरीरान्त होने से पूर्व ही यदि व्यक्ति ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो (जीव) बंधन से छूट जाता है। यदि नहीं कर पाया, तो बार-बार विभिन्न योनियों में भ्रमण करता है, ऐसा प्रसंग तृतीय वल्ली में व्याख्यायित किया गया है। व्यक्ति के हृदय में अनेक सांसारिक कामनायें रहती हैं, जब इनका समूल विनाश हो जाता है तब मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार कर लेता है और अमर हो जाता है- *यदा सर्वे प्रमुच्यते कामा येऽस्य हृदिश्रिताः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते।।2.3.14।।*

यमराज द्वारा प्राप्त इस विद्या से नचिकेता जन्म मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो गया।

केनोपनिषद् सामवेद के अन्तर्गत आता है। इस उपनिषद् के अन्तर्गत भी परब्रह्म की महिमा का संकीर्तन किया गया है। केनोपनिषद् के प्रथम एवं द्वितीय खण्ड में ब्रह्मज्ञान की चर्चा है; किन्तु तृतीय एवं चतुर्थ खण्ड में ब्रह्मज्ञान को एक कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। ब्रह्म ने देवों के अहं को ज्ञात करने के हेतु यक्ष का रूप धारण किया। यक्ष ने अग्नि, वायु की परीक्षा लेते हुये उनसे तिनका को जलाने और उड़ाने (क्रमशः) की बात कही। इस पर वे असमर्थ रहे। जैसे ही इन्द्र उस यक्ष के बारे में पता लगाना चाहे, यक्ष अन्तर्ध्यान हो गया। तब इन्द्रदेव उसी आकाश में स्थित भगवती हेमवती हिमांचल पुत्री उमादेवी के पास आ गये और उनसे पूछने लगे कि यह यक्ष कौन है- *स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमाँ हेतवतीं तॉ होवाच् किमेतद्यक्षमिति। केनोपनिषद् 3.12*

केनोपनिषद् के चतुर्थ खण्ड में भी यह कथानक जारी रहता है। उमादेवी कहती हैं- *सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये/ महीयध्वमिति ततो हैव विदांचकार ब्रह्मेति।। केनो0 4.1* अर्थात् उमादेवी कहती हैं, जिसे आप यक्ष समझ रहे हैं वे ब्रह्म हैं (एक समय उस ब्रह्म ने देवों को निमित्त बनाकर असुरों पर विजय प्राप्त की, परन्तु देवों को उस विजय को अपनी ही महिमा का प्रभाव समझने लगे) उनकी विजय को तुम लोगों ने अपने अहंभाव से अपनी विजय मान लिया था। देवी उमा के इस उत्तर से इन्द्रदेव ने स्पष्ट समझ लिया कि वह दिव्य यक्ष ही ब्रह्म थे। ब्रह्म का साक्षात्कार और ज्ञान सर्वप्रथम करने के कारण अग्नि, वायु, इन्द्र देव इन्य देवों से श्रेष्ठ माने गये। इस उपनिषद् में ब्रह्म के *तद्वन* स्वरूप की

चर्चा है। (तद् = भजनीयम्, वन = रस) जो ब्रह्म के इस स्वरूप को ज्ञात कर लेता है उसे सब प्राणी अपना प्रिय मानने लगते हैं।

तपस्या एवं मन व इन्द्रियों का नियंत्रण तथा आसक्ति रहित श्रेष्ठ कर्म ही ब्रह्मविद्या की प्राप्ति का आधार है।

गायत्र्युपनिषद् अथर्ववेद से सम्बद्ध है। इसके अन्तर्गत 8 कण्डिकायें हैं। प्रथम कण्डिका के अन्तर्गत विद्वान मौद्गल्य एवं ग्लाव मैत्रेय का एक दूसरे के प्रति आक्षेप कथोपकथन है। द्वितीय कण्डिका के अन्तर्गत ऋषि मौद्गल्य अपने शिष्य को आज्ञोपदिष्ट कर ऋषि ग्लाव मैत्रेय से गायत्री विवरण पृच्छा हेतु प्रेषित करते हैं। मैत्रेय मौद्गल्य द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर न देने के कारण स्वयं ऋषि मौद्गल्य के आश्रम पर उपस्थित होकर उनसे आदरपूर्वक पूछते हैं, हमें बतायें सविता क्या है, और सविता क्या है- *तमुपसंगृह्य पप्रच्छाधीहि भोः कः सविता का सावित्री* (गायत्र्यु0 2.8) तृतीय कण्डिका में ऋषि मौद्गल्य ने मैत्रेय को बताया मन ही सविता (प्रेरक) तत्व है, और वाणी सावित्री (प्रेरित तत्व) है। इसी प्रकार मौद्गल्य ने अग्नि-पृथ्वी, वायु-अन्तरिक्ष, आदित्य-द्युलोक, चन्द्रमा-नक्षत्र, दिन-रात्रि, उष्णता-शीत, मेघ-वर्षण, विद्युत-तड़क, प्राण-अन्न, वेद-छन्द, यज्ञ-दक्षिणा को भी क्रमशः सविता एवं सावित्री माना तथा इनके युग्मों को एक जोड़ा तथा उत्पत्ति केंद्र माना जिसे जानकर ग्लाव मैत्रेय मौद्गल्य के प्रति उपकृत हुए। चतुर्थ कण्डिका में मौद्गल्य ने मैत्रेय को *ब्रह्म* के श्रीरूप, प्रतिष्ठारूप एवं आश्रयरूप से परिचित कराकर तप की ओर प्रेरित करते हुये सत्य प्रतिष्ठा का संकीर्तन किया, उन्होंने गायत्री के प्रथम चरण *तत्सवितुर्वरेण्यं* का उपदेश भी इसी कण्डिका में किया, आगे ऋषि मौद्गल्य ने कहा- *पृथिव्यर्च्चं समदधादृचाऽग्निमग्निना श्रियं श्रिया स्त्रियं स्त्रिया मिथुनं मिथुनेन प्रजां प्रजया कर्म कर्मणा तपस्तपसा सत्यं सत्येन ब्रह्मणा ब्राह्मणं ब्राह्मणेन व्रतं व्रतेन वै ब्राह्मणः संशितोभवत्यशून्यो भवत्यविच्छिन्नः* (गायत्र्यु0 5.3) अर्थात् देव सविता ने पृथ्वी के साथ ऋक् को संयुक्त किया। ऋक् से अग्नि को, अग्नि से श्री को, श्री से स्त्री को, स्त्री से जोड़े को, जोड़े के साथ प्रजा को, प्रजा से कर्म को, कर्म से तप को, तप से सत्य को, सत्य से ब्रह्म को (वेदज्ञान), ब्रह्म (वेदज्ञान) से ब्राह्मण को, ब्राह्मण से व्रत को संयुक्त है, परिपूर्ण होता है और अविच्छिन्न होता है। पंचम कण्डिका में ऋषि मौद्गल्य ने *भर्गोदेवस्य धीमहि* एवं छठीं कण्डिका में *धियोयोनः प्रचोदयात्* की व्याख्या ऋषि मौद्गल्य ने ग्लाव मैत्रेय को समझाई। ऋषि मौद्गल्य ने सातवीं कण्डिका में यज्ञ को श्रेष्ठ कर्म के रूप में स्वीकारा तथा आठवीं कण्डिका में बारह महाभूतों को ब्रह्म में प्रतिष्ठित बताया।

स्रोत

अमृतनादोपनिषद्, मंत्र संख्या 1, 6, 7, 15, 39
ईशावास्योपनिषद्, मंत्र संख्या 1, 18
एकाक्षरोपनिषद्
ऐतरोयोपनिषद् (प्रथम अध्याय-प्रथम खण्ड), मंत्र संख्या 1.1; (द्वितीय अध्याय-प्रथम खण्ड), मंत्र संख्या 1
कठोपनिषद्, मंत्र संख्या 4, 6, 8, 1.1.25, 1.1.26, 1.1.28, 1.2.16, 2.1.7, 2.1.8, 2.3.14
केनोपनिषद्, मंत्र संख्या 3.12, 4.1
गायत्र्युपनिषद्, मंत्र संख्या 2.8, 5.3

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) 8,6-7
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 17 सितम्बर 2014

वैदिक साहित्य में जीवन मृत्यु की सत्यता

डॉ. स्मिता द्विवेदी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *वैदिक साहित्य में जीवन मृत्यु की सत्यता* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *स्मिता द्विवेदी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

जीवन और मृत्यु दोनों ही शब्द संस्कृत भाषा के हैं तथा एक दूसरे के विरोधी हैं। जीव, प्राणधारणे धातु से जीवन शब्द और मृड् प्राणत्यागे से मृत्यु शब्द की व्युत्पत्ति होती है। जब तक शरीर में प्राणवायु का संचार होता रहता है व्यक्ति जीवित कहलाता है जहाँ इसका संचार समाप्त हो जाता है तो जीव मृत कहलाता हैं। इसीलिए प्राण को श्रेष्ठ माना गया है। ''यो ह वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेद ज्येष्ठश्च ह वै श्रैष्ठश्च भवति प्राणो वा व ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च।''[1]

जीवन और मृत्यु उसके पूर्वकृत कर्म पर आधारित होते हैं। भौतिक जगत में यह नियम सब लोग जानते है कि प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया अनिवार्यतः होती है। मनुष्य जगत् में प्रत्यक्ष रूप से यह अनुभव होता है कि जो जैसा करेगा वैसा उसे भोगना पड़ेगा। बिना कर्म के मनुष्य एक क्षण भी नहीं रह सकता, ''न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्य कर्मकृत्।'' जन्म जीव के पूर्वकृत कर्मों का परिणाम होता है।

कठोपनिषद् में नचिकेता के निष्काम भाव व दृढ़ निश्चय को देखकर यमराज प्रसन्न होकर जन्म मृत्यु की सत्यता को प्रकट करते हुए कहने लगे, ''न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्। अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुन-र्वशमापद्यते में।।''[2]

जो मूर्ख धन के मोह से अंधे होकर प्रमाद में लगे रहते हैं उन्हें परलोक साधन नहीं सूझता। यही लोक हैं परलोक नहीं है ऐसा मानने वाला मनुष्य बरम्बार मेरे चंगुल में फंसता है अर्थात् जन्मता और मरता है।

...किन्तु यमराज ने प्रसन्न होकर आत्मा के विषय में नचिकेता को बताया, ''यह आत्मा न तो जन्म लेता है और न इसकी मृत्यु होती हैं। यह न तो किसी वस्तु से उत्पन्न हुआ है और न स्वयं ही कुछ बना है। यह अजन्मा नित्य शाश्वत और पुरातन है तथा शरीर के विनाश किए जाने पर भी नष्ट नहीं होता।'' ''योमिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः। स्थाणुमन्ये-ऽनुसंचन्ति यथा कर्म यथाक्षुतम्।।''[3]

* पूर्व शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

गीता में भी जीवन मृत्यु की सत्यता का प्रतिपादन प्राप्त होता है, ''न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः/ न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्।।''[4]

न तो ऐसा ही है कि मैं किसी काल में नहीं था या तूं नहीं था अथवा ये राजा लोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे।

''वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति नरोऽपराणि/ तथा शरीराणि विहाय जीर्णा न्यन्यानि संयाति नवानि देही।''[5] जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर नए वस्त्र ग्रहण करता हैं वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को त्यागकर नवीन शरीरों को प्राप्त करता हैं।

योग सूत्र में भी जन्म मृत्यु की अवधारणा विषय आया है। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं, ''क्लेशमूलः कर्माशयो/ दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः।''[6] अर्थात् क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश (मृत्युभय)) जिनकी जड़ हैं वे कर्मों की वासनाएं वर्तमान अथवा आगे के जन्मों में भोगे जा सकते हैं।

उन वासनाओं का फल जाति आयु और भोग (सुख-दुःख) होते हैं, ''सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगः।''

मनुस्मृति भी जीवन मृत्यु की सत्यता का प्रतिपादन करती हैं यथा, ''देवत्वं सात्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः। तिर्यक्त्वं तामसा नित्यम् इत्येषा त्रिविधा गतिः।।''[7]

सत्वगुणी लोग देवयोनि को, रजोगुणी मनुष्य योनि को, तमोगुणी तिर्यग् योनि को प्राप्त होते हैं। जीवों की सदा यही तीन गति होती है।

प्रत्येक जीव की मृत्यु दो प्रकार की होती है- 1. काल मृत्यु और 2. अकाल मृत्यु।

प्रारब्ध के अनुसार जिस जीव को जिस शरीर में जितनें समय तक रहना हैं उतने समय तक वह उस शरीर में रहकर जब मृत्यु को प्राप्त होता है उसे काल मृत्यु कहते हैं।

प्रारब्ध समाप्त हुए बिना ही जब कोई प्राणी शरीर त्याग देता है तो उसे अकाल मृत्यु कहा जाता है।

भगवान् की शरण लेने वाले की रक्षा वे प्रभु स्वयं करते हैं। अतः भक्त की अकाल मृत्यु न होती है और न होनी सम्भव ही है।

पञ्चभूतों से निर्मित यह देह नाशवान है। प्रत्येक जन्मी हुई वस्तु की मृत्यु होना एक शाश्वत सत्य है।

जब मनुष्य जन्म लेता है तो उसका स्पष्ट दिखाई देने वाला शरीर स्थूल शरीर व उसकी आत्मा सूक्ष्म शरीर कहलाती है। इस आत्मा का आकार एक अंगूठे के आकार का होता हैं और यह ज्योति रूप में हृदय में निवास करती है। ''अंगुष्ठमात्रः पुरुषो/ ज्योतिरिवा धूमकः।''[8]

सूक्ष्म शरीर जब स्थूल शरीर को छोड़ता है तो उसे मृत्यु कहते हैं।

सूक्ष्म शरीर की दो गतियाँ होती है- 1. देवयान 2. पितृयान। देवयान से ब्रह्म की प्राप्ति होती है अथवा आत्मतत्त्व में विलीनीकरण हो जाता हैं और पितृयान से जन्म मृत्यु अथवा पार्थिव शरीर की प्राप्ति होती है। इस प्रकार जीवन और मृत्यु की सत्यता सिद्ध होती है।

सन्दर्भ

[1]छान्दोग्य उपनिषद्, 5/1/1
[2]कठोपनिषद्, 1/2/6
[3]कठोपनिषद्, 2/2/7
[4]गीता, 2/12
[5]गीता, 2/22
[6]योग सूत्र - साधन पाद, 12
[7]मनुस्मृति, 12/40
[8]कठोपनिषद्, 2/1/13

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) 8,8-10
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 13 सितम्बर 2014

पृथ्वी सूक्त : वनस्पति और औषधियों का स्त्रोत

डॉ. स्मिता श्रीवास्तव*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *पृथ्वी सूक्त : वनस्पति और औषधियों का स्त्रोत* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *स्मिता श्रीवास्तव* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान गौरवपूर्ण एवं सम्माननीय है। हिन्दुओं के आचार-विचार, रहन-सहन तथा धर्म-कर्मकाण्डादि को पूर्णतया समझने के लिए वेदों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। वेद न केवल भारतीय समाज द्वारा समादृत हैं बल्कि विश्व के महान् विद्वानों ने भी उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखा है तथा उनकी महत्ता को स्वीकारा है। भारतीय परम्परा के अनुसार वेद अपौरूषेय हैं। वे सदियों पूर्व से मानव-जीवन के कल्याण के साधन बनकर उन्हें अनुप्राणित करते आये हैं। इनमें ज्ञान-विज्ञान, धर्म-दर्शन, सदाचार-संस्कृति, सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन से सम्बन्धित सभी विषय उपलब्ध हैं। अतएव विद्वानों ने इसे विश्वकोष के रूप में मान्य किया है। वेदाध्ययन के बिना भारतीय संस्कृति एवं भारतीयों के जीवन-दर्शन को समझना अत्यन्त कठिन है। मनु ने तो उन्हें सब धर्मों का मूल कहा है, 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।'[1]

वेद के विषय में मान्यता है कि जिन तत्त्वों का ज्ञान अन्य सांसारिक साधनों से सम्भव नहीं है, उनका ज्ञान वेद से हो सकता है, ''प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते। एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।।''

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वेद भारत की संस्कृति का प्राचीनतम निदर्शन है। वेद को आधार बनाकर ही धर्म, दर्शन, अध्यात्म, विज्ञान, कला और साहित्य के क्षेत्र में भारत ने असाधारण उपलब्धि प्राप्त की है।

'वेद' का अर्थ

'वेद' शब्द 'विद्' धातु से घञ् प्रत्यय होकर बनता है, जिसका अर्थ होता है 'ज्ञान' अतएव वेद शब्द का अर्थ है- ज्ञान की राशि या ज्ञान का संग्रह ग्रन्थ। प्राचीन ऋषियों ने जो ज्ञान अर्जित किया था, उसका संग्रह वेदों में है। वेद और विद्या दोनों शब्द 'विद्' धातु से बने हैं और वेद शब्द का प्राचीन साहित्य में विद्या अर्थ में प्रयोग भी हुआ है, अतः प्राचीन समस्त विद्याओं को वेद (ज्ञान) शब्द के अन्तर्गत लिया जाता था। इसी आधार पर आयुर्वेद, धनुर्वेद आदि उपवेद माने जाते हैं। सायण ने वेद शब्द

* संस्कृत साहित्य, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत E-mail : smitasrivastava63@gmail.com

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

की दूसरी व्याख्या भी की है, 'इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः।'[2] अर्थात् जो ग्रन्थ इष्ट-प्राप्ति और अनिष्ट निवारण का अलौकिक उपाय बताता है, उसे वेद कहते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अच्छा क्या है और बुरा क्या है? यह वेद ही बताता है। यह अर्थ कर्मकाण्डियों की दृष्टि से किया गया है। गुरु-शिष्य-परम्परा के द्वारा सुरक्षित किये जाने के कारण अर्थात् गुरु के द्वारा उच्चरित वाक्यों को शिष्य द्वारा श्रवण करके स्मरण रखने के कारण वेद को 'श्रुति' भी कहते हैं। इस श्रुति परम्परा के द्वारा वेद के वाक्यों को अद्यावधि सुरक्षित रखा गया है। इतने दीर्घकाल तक किसी साहित्य की मौखिक परम्परा और सुरक्षा का इतिहास नहीं है। यह वेदों के प्रति भारतीय अध्येताओं की आस्था का द्योतक है। आधुनिक वस्तुनिष्ठ दृष्टि से 'वेद' वह शब्दराशि है जो भारतवर्ष में प्राचीन ऋषियों के द्वारा सर्वप्रथम प्रकट हुई और जिसे कालान्तर में याज्ञिक उपयोग के लिए संहिताबद्ध किया गया। तदनुसार ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के रूप में प्राचीन ज्ञानराशि को चार वर्गों में विभाजित किया गया।

इस प्रकार 'वेद' शब्द प्राचीनकाल में 'ज्ञान' के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है किन्तु वेद न तो 'कुरान' के समान कोई धर्मग्रन्थ है और न 'बाइबिल' और 'त्रिपिटक' के समान महापुरूषों के वचनों का सङ्ग्रह है। 'वेद' शब्द से वह ईश्वरीय ज्ञान अभिप्रेत है, जिसके अन्तर्गत वे समस्त वाङ्मय संग्रहीत हैं जो शताब्दियों से नहीं, बल्कि सहस्राब्दियों में जाकर महर्षियों द्वारा उपलब्ध हुए हैं।

वनस्पति और औषधियों का स्रोत

अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में अथर्वण ऋषि ने मातृरूपिणी भूमि की समग्र पार्थिव पदार्थों की जननी तथा पोषिका के रूप में महिमा समुद्घोषित की है तथा प्रजा को समस्त बुराइयों, क्लेशों तथा अनर्थों से बचाने व सुख-सम्पत्ति की वृष्टि के लिए प्रार्थना की है। इस प्रकार पृथ्वी विषयक इस एकमात्र सूक्त में 'मातृभूमि' की वनस्पति और औषधियों के स्रोत के रूप में मनोरम व्याख्या की गई है।

मानव की उत्पत्ति के पूर्व ही वनस्पतियों का प्रादुर्भाव हो गया था और वे सम्पूर्ण जगत् में अपना राज्य स्थापित कर चुके थे। जन्म से ही मनुष्यों का इन वनस्पतियों से सम्बन्ध रहा है। ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि देवज्ञान के तीन युगों पूर्व ही वनस्पतियों की उत्पत्ति का ज्ञान हो चुका था।[3] पृथ्वी सूक्त के सूक्ष्म और वैज्ञानिक अध्ययन से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि तत्कालीन वनस्पतियों का विज्ञान क्षेत्र विस्तृत एवं गहन था। ऋषि-महर्षि तथा सामान्यजन पृथ्वी के अनुपम सौन्दर्य का लाभ उठाते थे। तत्कालीन लोगों का सम्पूर्ण जीवन वनस्पतिमय था। लताएं, वृक्ष आदि वनस्पतियों के रूप में प्रयोग की जाती थी। वनस्पतियाँ, जल, भूमि, अग्नि और आकाश का सारभूत अंश है। वर्षा से ही वनस्पतियों का विकास होता है।

पृथ्वी सूक्त में वनस्पतियों के महत्व को बताते हुए कहा गया है कि जिस पृथ्वी पर समुद्र, नदियाँ और जल हैं, जिस पर अन्न और फसलें उत्पन्न होती हैं, जिस पर यह श्वास लेने वाला और गतिशील जगत् आनन्दित होता है, वह पृथिवी हमें उत्तम पेय वाले प्रदेश में स्थापित करें।[4]

अथर्ववेद में वनस्पतियों का पिता अन्तरिक्ष को तथा माता पृथ्वी को माना गया है एवं इनका मूल समुद्र में होने का उल्लेख है। पृथ्वी का भेदन करते हुए उत्पन्न होने के कारण ही पृथ्वी इन वनस्पतियों और औषधियों की माता कही गयी है। अन्तरिक्ष में इनका विस्तार होने के कारण इनको पिता कहा गया है। वनस्पतियों की उत्पत्ति में ये तीनों ही मूलभूत कारण हैं। कुछ वनस्पतियाँ पर्वतों पर उत्पन्न होती हैं, कुछ भूमि के अन्दर उत्पन्न होती हैं तथा कुछ खेती से उत्पन्न होती हैं। यथा- गेहूँ, धान आदि।

पृथ्वी सूक्त में इस वनस्पति के विषय में यह कहा गया है कि जिस पृथिवी की चार प्रमुख दिशायें हैं, जिस पर अन्न और फसलें उत्पन्न होती हैं, जो श्वास लेने वाले तथा गतिशील जगत् को अनेक प्रकार से धारण करती है, वह पृथिवी हमें गायों और अन्न में स्थापित करे।[5]

पर्वत आदि भी वनस्पतियों का स्रोत है क्योंकि सोमलता पर्वतीय क्षेत्र से ही प्राप्त होता है तथा दो पत्थरों से रगड़कर इसके रस का प्रयोग औषधि के रूप में किया जाता था। ये भूमिगत वनस्पतियों का ही प्रभाव है कि चेतन पृथ्वी कभी क्षतिग्रस्त

नहीं होती है। वनस्पतियों को आग्नेय भी कहा जाता है। पृथ्वी वनस्पतियों तथा खाद्य पदार्थ ग्रहण करके विकसित होती है एवं जल पोषक तत्त्व है जो अग्नि से रूपान्तरित होकर वनस्पतियों को विकसित करता है।

हमारे गृह निर्माण से लेकर आहार एवं औषधि तथा विभिन्न उपकरणों एवं पात्रों के लिए वनस्पतियों का ही आश्रय लेना पड़ता था। यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली हवन समिधाएं भी इन्हीं वनस्पतियों की देन हैं। मादक पेय के रूप में प्रयुक्त होने वाला इन्द्र का प्रिय सोम भी वनस्पतियों से उपलब्ध होता था।

चिकित्सा कार्य में तथा दैनिक दिनचर्या यथा- आहार, साज-सज्जा, वस्त्रादि के रूप में तथा व्यापार में जाने के लिए रथों आदि का निर्माण भी इन्हीं वनस्पतियों से होता था। ये वनस्पतियाँ प्राकृतिक आपदा में मौसम से भी सुरक्षा देने में उपयोगी थीं।

मनुष्य के लिए जहाँ ये वनस्पतियाँ उपयुक्त थीं वहीं पशु आदि के लिए भी आवश्यक थीं। पशु इन्हीं वनस्पतियों पर निर्भर थे। खाद्यान्नों के चारे- वृक्ष, घास आदि को खाकर ही वे स्वस्थ रह सकते थे। इस प्रकार पृथ्वी सूक्त में वनस्पतियों का अल्प मात्रा में किन्तु सुन्दर विवेचन हुआ है।

इस सूक्त में औषधियों का भी उल्लेख है। औषधियाँ गन्ध युक्त होती थीं क्योंकि ये प्रकृति प्रदत्त होती थी। औषधियों के गन्धवती होने का एक कारण यह भी है कि वे पृथ्वी से गुणों को हस्तान्तरित करके ग्रहण की गयी थीं। पृथ्वी सूक्त में औषधियों के महत्त्व को बताते हुए कहा गया है कि जिस पृथ्वी के बहुत से ऊँचे, नीचे और समतल क्षेत्र मनुष्यों के बीच बाधा रहित स्थित हैं, जो अनेक प्रकार की शक्तियों से युक्त औषधियों को धारण करती है, वह पृथिवी हमारे लिए विस्तृत हो और हमारे लिए समृद्ध बने।[6]

खेती से प्राप्त वनस्पतियाँ जैसे- गेहूँ, जौ आदि औषधि का काम करती थीं। इनका चूर्ण यज्ञ आदि में प्रयोग किया जाता था। गेहूँ का प्रयोग विष नाशक के रूप में करने का उल्लेख अथर्ववेद में प्राप्त होता है। विभिन्न प्रकार के विषधारी जीव जैसे- सर्प, बिच्छू आदि के काटने से जो प्यास का अनुभव होता है, उस समय औषधियों का रस इस विष को कम करने में प्रयुक्त होता था। सूर्य की किरणें औषधि के समान फलदायी होती हैं। ये किरणें वात रोग, ज्वर, नेत्र रोग आदि दूर करने में सहायक होती थी। प्राकृतिक पदार्थों में जल को महौषधि कहा गया है। यह आँख, पैर, पीठ आदि के दर्द को कम करता है तथा शरीर को पवित्र करता है। पृथ्वी सम्पूर्ण जगत् (पृथ्वी) पर व्याप्त मलिन अर्थात् कुपोषित पदार्थों को अपनी ओर खींचकर शुद्ध करती है। पृथ्वी से उत्पन्न औषधियाँ विभिन्न प्रकार की चिकित्सा पद्धति में प्रयुक्त होती थी, इनमें भी कुछ रोगों की चिकित्सा औषधि से, कुछ की प्राकृतिक रूप से तथा कुछ की मन्त्रों के प्रयोग से की जाती थी। जनसाधारण के लिए यह सरलतम विधियाँ थीं। पृथ्वी से उत्पन्न वृक्षों को अभिमन्त्रित करके उनसे भी चिकित्सा करने का विधान था।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि पृथ्वी विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों और औषधियों का भंडार है, जिसका संरक्षण करना अत्यन्त आवश्यक है। जिस प्रकार से पृथ्वी का दोहन हो रहा है, उसके गम्भीर परिणाम परिलक्षित हो रहे हैं। उत्तराखण्ड में आयी आपदा इसी दोहन का परिणाम है। अतः हम सबको मिलकर इसका संरक्षण करना होगा, जिससे यह पृथ्वी हमारे लिए सुखकर हो।

Footnotes

[1]*मनुस्मृति-* 2/6

[2]*तैत्तिरीय संहिता के भाष्य की भूमिका*

[3]*या औषधीः पूर्वाजाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।* ऋग्वेद 10.97.1

[4]*यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः। यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु।।* अथर्ववेद, पृथ्वी सूक्त 12/1.3

[5]*यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः। या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु।।* अथर्ववेद, पृथ्वी सूक्त 12/1.4

[6]*असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु। नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवीः न प्रथतां राध्यतां नः।।* अथर्ववेद, पृथ्वी सूक्त 12/1.2

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) 8,11-15
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 06 सितम्बर 2014

"आशाशिशु" उपन्यास की कथावस्तु की समीक्षा

सरोज बाला*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *"आशाशिशु" उपन्यास की कथावस्तु की समीक्षा* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *सरोज बाला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

''आशाशिशु'' उपन्यास के रचनाकार- डा. सूर्यनारायण द्विवेदी हैं। इस उपन्यास का प्रकाशन श्री श्री राधा प्रकाशन, वाराणसी से सन् 1999 इसवी में हुआ था। इसकी कथा देवर्षि नारद के पौराणिक चरित्र से जुडी हुई है। देवर्षि नारद का चरित्र प्रायः एक मनोरंजक पात्र के रुप में लोक के सामने आया है, पर वास्तव में देवर्षि नारद एक ऐसे चरित्र की संज्ञा हैं जिसमें समस्त विधाओं को अधिगत करने के पश्चात् अपनी साधना एवं उपासना के आधार पर विश्व के स्रष्टा, रक्षक एवं संहर्ता तीनों शक्तियों की अनुंकम्पा पा ली थी। अतएव आदिकाल से ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के अत्यन्त प्रिय पात्रों में हो गए।

देवर्षि नारद के नारदपुराण के अनुसार तीन जन्म हुए। पहले जन्म में वे उपवर्हण नाम के गन्धर्व थे। जहाँ से शापवश उन्हें मृत्युलोक में एक दासी पुत्र होना पड़ा। तीसरे जन्म में वे साक्षात् ब्रह्म के पुत्र हुए। जहाँ उन्होंने विविध चरित्रों का समुद्धार कर्म किया।

प्रस्तुत उपन्यास उनके द्वितीय जन्म पर आधारित है। इस जन्म में नारद ऋषि का नाम अंशुल है। कथावस्तु को सुन्दर आकर्षक बनाने के लिए, ताकि पाठकों का मन उसमें रम सके, उसे उदात्त, मधुर, रोचक और स्वाभाविक बनाया जाता है। इन्हीं को उसके गुण कहा जाता है। यह लेखक का कौशल है कि अपने पाठक को कथा से बाँधे रखने के लिए वह उसे किस प्रकार आकर्षक रूप में प्रस्तुत करें।

कथानक के विषय में डा0 रामलखन शुक्ल लिखते हैं- जीवन और जगत अत्यंत विस्तीर्ण है और कलाकार की प्रतिमा उसके भीतर प्रवेश करने की शक्ति रखती है। इसमें कोई संदेह नहीं की जीवन और जगत की तुलना में व्यक्ति कलाकार अत्यंत छोटा है। .....वह कुछ निजी अनुभूति के सहारे और कुछ दूसरों की अनुभूति के सहारे विराट विश्व के रहस्यमय तत्वों को समझ सकता है तथा अपने कल्पना सम्बल के सहारे उनका मनोरम चित्र प्रस्तुत कर सकता है। उसके सामने ही जो

* गवर्नमेंट सीनियर सेकेंड्री स्कूल [आर्य नगर] हिसार (हरियाणा) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

संसार है, जिसका वह प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है वह इतना विशाल और व्यापक है कि वह उसे सहस्त्रों उपन्यास का कथानक दे सकता है, कलाकार के पास परखने की कला वाली आखें होनी चाहिए।[1]

वास्तव में उपन्यास एक जीवन प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करता है। भले ही वह अत्यन्त शिथिल हो, पर उसे अन्तर्सूत्रों का एक ढाँचा मिलना ही चाहिए। उपन्यास की प्रक्रिया में अन्तर्दृष्टि मुख्य है, जो प्रकट तथ्यों के आंतरिक सत्य की भव्य छाया भी प्रस्तुत करती है। मुन्शी प्रेमचंद उपन्यास के कथानक के स्रोत के बारे में कहते है, ''अगर लेखक अपनी आंखें खुली रखे, तो उसे हवा से भी कहानियां मिल सकती हैं। रेलगाड़ी में, नौकाओं पर, समाचार पत्रों में, मनुष्य के वार्तालाप में और हजारों जगह में सुन्दर कहानियॉ बनाई जा सकती हैं।.....''उपन्यासों के लिए पुस्तकों से मसाला न लेकर जीवन से ही लेना चाहिए।''[2]

'निष्कर्षतरू' उपन्यास वैयक्तिक जीवनानुभूति का सहज रूपात्मक विस्तार है, जो जगत को भी अपने रंग में रंगता है और उसके रंग भी यदा-कदा लेता है। उपन्यासकार की सफलता इसी में है कि वह अपनी कथावस्तु को इतना संप्राण, सरस, मार्मिक एवं संवेगात्मक रूप में प्रस्तुत करें कि पाठक अपने तादात्म कर लें और कथा उसके मर्मस्थल को छू ले। वही उपन्यास सफल भी होते हैं। जिनकी कथावस्तु इन गुणों से सम्पन्न होती है।

''आशाशिशु'' उपन्यास की कथावस्तु पौराणिक होने के साथ-साथ आदि से अन्त तक विविधता के साथ ही रोचक और जिज्ञासा की अभिव्यक्ति करने वाली है। उपन्यास आदि से अन्त तक पढ़े बिना उसकी वैचारिक गरिमा, नाम का कारण और सम्पूर्ण घटनाक्रम ज्ञात नहीं होता। इतने विशाल आकार के होते हुए भी इसमें संगठनात्मक एवं सुसम्बद्धता है। एक सफल औपन्यासिक कथावस्तु में निम्नलिखित गुणों की अपेक्षा की जाती है- 1. मौलिकता, 2. रोचकता, 3. स्वाभाविकता, 4. संवेगात्मकता, 5. उत्सुकता, 6. सम्बद्धता और संगठनात्मकता।

कथानक की मौलिकता- ''जो जीवन जगत के समस्त तत्वों को समझते हुए किन्ही विशिष्ट किन्तु अन्य की आंखों से अस्पष्ट तत्व को ग्रहण कर उसके आधार पर अपने कथा-तन्तु की निर्मिति करता है, वह वस्तुतः मौलिक लेखक है।''[3]

मौलिकता से आशय कल्पना-प्रधान कहानी से कदापि नहीं है। यदपि कहानी काल्पनिक ही होती है, किन्तु उसका धरातल यथार्थवाही होता है। इसीलिए यथार्थ के धरातल पर सृजित कहानी कल्पना के विशेष रंग से रंगी जाने पर मौलिक कहलायेगी। ''आशाशिशु'' उपन्यास में जिस प्रकार की घटनाओं का संयोजन किया गया है, उससे उसकी कथावस्तुगत मौलिकता स्पष्ट है। न केवल कथानक में अपितु वर्णन-परिपाटी में भी पर्याप्त मौलिकता है। व्यक्ति मन की व्यथा, अकेलापन, स्नेह, सेवाभाव, अलौकिक शक्ति के प्रति आस्था व उनका सरल व स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत करने में लेखक पूर्णतः सफल रहा। अलौकिक शक्ति के प्रति आस्था का चित्रण करने में लेखक मौलिकता निम्नांकित उद्धरण में दृष्टव्य है, ''अब तक उन तीनों की आंखें अभ्यागत के प्रकाशपुंज से घिरे स्वरूप को देखने में अभ्यस्त हो गयी थी। उपयमा के सामने हाथ जोड़कर उसने कहा, ''देवि उपयमा, तुम्हें हमारे प्रियसाथी की जननी बनने का परम सौभाग्य मिल गया है, कलेजे के इस टुकड़े की जान देकर भी रक्षा करना। यह संसार की बहुत बड़ी सम्पत्ति है।'' उपयमा को यदपि अभ्यागत की बातें अनुमान लगाते देर नहीं लगी कि शिशु अंशुल का इस पूर्वजन्मीय से कोई नाता अवश्य होगा। तीनों को देखते ही अंशुल पर दृष्टिपात[4] करता हुआ अभ्यागत धीरे-धीरे वृक्षों के पीछे विलीन हो गया। तीनों स्तब्ध से इस अप्रत्याशित घटना के बारे में सोच रहे थे कि न तो उनके पल्ले अभ्यागत की बातों का अर्थ पड़ा था और न ही उसके विलाप की कथा ही। यह कोई वनदेवी रही है ऐसा सोचकर उन्होंने उस दिशा के प्रति श्रद्धा सहित हाथ अवश्य जोड़ दिये।''[5]

रोचकता

कथावस्तु जब तक रोचक नहीं होगी, जब तक अपने पाठकों के मन को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पायेगी। अतः उसका आकर्षक और रोचक होना बहुत आवश्यक है। ''लेखक की रचना में जो रहस्यात्मकता होती है और समस्याओं के जो अनेक मोड़ होते है वे पाठक के कुतूहल के पोषक होते हैं; किन्तु जब उपन्यास में ऐसे तत्वों का ह्रास हो जाएगा तो उपन्यास की रोचकता बाधित हो जाएगी। रचना पढ़ने में पाठक का कुतूहल तब भी बना रहता है, जबकि लेखक रोचक शैली में अपनी रचना प्रस्तुत करे।''[6]

''आशाशिशु'' उपन्यास में यह गुण सहज ही प्राप्त है। यदपि बीच-बीच में यदा-कदा विचारों की बौद्धिकता भी प्रकट है, किन्तु वह भी कदापि अरोचक नहीं है। इसका कारण यह है कि लेखक ने विचारों को भी इस प्रकार घटनाओं से संलग्न किया है कि मनोरंजकता तथा रोचकता सर्वत्र बनी रहती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है, ''अंशुल अब तुतली बोली में भैया-मौसी-भैया इन शब्दों को बोल पाता कुछ टूटी फूटी क्रियाओं से जोड़कर और कुछ संकेतों के माध्यम से अपनी बातें समझा लेने लगा था। धीरे-धीरे उसकी इस गति से वे दोनों संतुष्ट थी। अब वह कुछ दूर तक चल और दौड़ भी लेता था।

जब वे जंगल को जाना चाहती, वह उनके साथ जाने का हठ करता और मना करने पर रुठ जाता। ऐसे क्षणों में उसको मनाने और उसकी नाराजगी को देखने में इन दोनों को आनन्द मिलता। तब उनमें से एक अंशुल का पक्ष ले लेती और दूसरी उसकी अप्रसन्नता को और उकसाने में रुचि लेती। वे कहती, ''तुम चाहे न ले जाओ मैं उसे जंगल में ले जाऊँगी।'' अंशुल तुरंत मान जाता और कहता, ''अब उसके साथ नहीं जायेंगे।'' जब उपयमा कहती, ''मैं ले कहां जा रही हूँ।'' चीमा अंशुल से बोलती, ''तुम्हारे साथ वो जा कहां रहा है ? हम लोग तो कोमा को दुहेंगे उसका दूध पियेंगे। नन्दी के साथ खेलेंगे रेवा मैया के किनारे कुलांचे मारेंगे, चलो, चलो जाओ हट जाओ यहां से।''[7]

संवादात्मक पद्धति से लेखक ने अंशुल, उसकी मां व मौसी चीमा के बीच शिशु क्रियाओं कि चर्चा कितने रोचक रूप में प्रस्तुत कर दिया, यह पाठक स्वयं सोच सकते हैं। अतः कहा जा सकता है कि उपन्यास में सर्वत्र रोचकता का गुण है।

स्वाभाविकता

मौलिक और रोचक होते हुए भी उपन्यास मात्र कल्पना की एक उडान भर नहीं है, इसका व्यापक, यर्थाथवादी धरातल है। उपन्यास कि किसी भी घटना को, किसी भी प्रसंग को देख लीजिए, हर जगह स्वाभाविकता का गुण दिखाई देगा। इस सम्बंध में उदाहरण प्रस्तुत है, ''अंशुल के स्पर्श में ही नहीं उसकी बोली में उसकी चेष्टाओं में उसकी प्रसन्नता में, उसके उठने में उसके जागने और सोने में क्या? उसकि सभी अनुभवों में उपयमा को जो सुख मिलता उसके प्राण उसे पाने के साथ-साथ लगातार एक लालसा पाले रहते कि उसका शंकुल काश इस सुख के क्षणों का सहभागी बन पाता।

सच तो यह है कि प्रेम के संसार की यह एक सहज मांग है कि जब प्रेमी सुखी या दुखी होता है वह अपने प्रेमास्पद का भी उन भावनाओं से जोडने की लालसा रखता है। ऐसे क्षणों में उसे न अपने का ध्यान रहता है और न अपने ऐकाकिंत सुख मात्र का। वह चाहता है कि उसका प्रेमास्पद उसके द्वारा अनुसूचित सुख स्थितियों का आनन्द ले। उपयमा को अंशुल के द्वारा जिस वात्सल्य सुख का अनुभव हो रहा था वह प्रतिपल चाहती थी कि शंकुल भी इन प्रेममय, वात्सल्य मय, स्नेहमय, स्थितियों का आनन्द ले पाता''[8]

संवेगात्मक

औपन्यासिक कथावस्तु की सफलता इसी में है कि उसमें सम्वेग-तीव्रता हो। इसे हम वेग विस्तार भी कह सकते हैं यह तभी संभव हो सकता है, जब कि स्रष्टा सजीव चित्रण या बिम्बीकरण की कला में निपुण हो। किसी चरित्र अथवा घटना को निजी कल्पना- बल से संवेग और बौधिक तीव्रता के माध्यम से, स्रष्टा संवेगात्मक बना देता है। आशय यही है कि उपन्यासकार इन्द्रियज संवेग को बौधिक तीव्रता देकर ह्रदयग्राह्य बना देता है। संवेग तीव्रता जिस उपन्यास में जितनी अधिक होगी, उसकी कथावस्तु उतनी ही अधिक प्रभावी होगी। जहां तक 'आशाशिशु' उपन्यास कि कथावस्तु का प्रश्न है, इसकी कथावस्तु में संवेग तीव्रता अपने चरम उत्कर्ष पर परिलक्षित होती है। यह सम्वेगात्मक कथावस्तु इतनी निखरी हुई है कि पाठक के अन्तस् में अपना मार्मिक प्रभाव छोडती है एक उदाहरण, ''शंकुल सोचता जा रहा था- उपयमा जैसी संगिनी पाकर उसने एक दिन गर्व अनुभव किया था किन्तु उसे पाकर उपयमा का क्या मिला? केवल पीड़ा केवल दुःख। न जाने किस हवस में किसी मनचले का साथ पाकर बरसों पहले उपयमा को बिलखती छोडकर कुछ बन जाने की इच्छा से इधर उधर भटकता रहा। वह तो मिला ही नहीं, अपनी भी सम्पदा खो गई। ''उपयमा! मैने तुझे बहुत दुःख दिया चीमा ने मुझे बताया कि तूने एक प्यारे शिशु को जन्म दिया था, मेरी छाती दुगुनी हो गई थी, सोचा था अब हम दोनों मिलकर उस शिशु के सहारे जीवन नौका चला लेगें। उपयमा!

यदि तू मेरी बात सुन रही हो तो एक बार उठ जाओ। प्रिय सखी! तुम्हारा इस प्रकार रूठ कर जाना मुझे चैन से सोने नहीं देगा।''[9]

उत्सुकता

औपन्यासिक कथावस्तु में उत्सुकता बनाये रखना भी उपन्यासकार के कौशल का एक अंग है वास्तव में यदि देखा जाये तो उत्सुकता मानव मात्र में होती है, वह स्वाभाविक एवं आद्य है, अतः सदा रहेगी। अतः उत्सुकतामय कथा, उपन्यास का मेंरूदण्ड है।

''कथानक में पाठकों के कुतूहल को बनाए रखने की क्षमता होनी चाहिए। कुतूहल मानव की आदिमवृति है और बहुत ही सतहीवृति है। सनसनीखेज रचनाएं कुतूहल जागरित करने में अधिक सफल सिद्ध हो सकती है और उच्चकोटि की रचनाओं में इस ओर ध्यान नहीं दिया जाता; किन्तु किसी न किसी रूप में कुतूहल का होना आवश्यक होता है।''[10]

अतः उत्सुकता का आद्यन्त निर्वाह कथा का एकमात्र गुण है और उत्सुकता के प्रति पाठकों का उदासीन कर देना उसका एकमात्र सबसे बड़ा दोष है। स्पष्ट है कि उत्सुकता के साथ ही मानव के अन्तर्मन में व्याप्त अनेक ग्रन्थियों का उल्लेख उद्‌घाटन अत्यन्त आवश्यक है। 'आशाशिशु' उपन्यास में यह गुण विशेष रूप में द्रष्टव्य है। अंशुल के पूर्वजन्म व अभिशापित इस जन्म के परिपेक्ष्य में जो घटनाएँ एक के बाद एक घटती चली जाती हैं। वे अत्यंत उत्सुकतावर्द्धक है और पाठक सांस रोककर यह प्रतीक्षा करता चलता है कि देखें आगे क्या होता है। निर्जन वनप्रान्त की घटनाओं व हिंसक जानवरों के बारे में सोचे बिना उपयमा का भटकना, सांप के डसने से उपयमा कि मृत्यु होना, अंशुल का अकेले रह जाना, जंगलप्रात में अंशुल का खो जाना, चीमा व शंकुल का मिलना, अंशुल कि खोज करना, जंगल में अंशुल का आशांकित सा टहलना उत्सुकता की सृष्टि करने में सहायक हुए हैं। एक उदाहरण देखिए, ''पेड़ों की घनी छाया ने जंगल को और अधिक भयावह बना दिया। शिशु स्वभाव के कारण अनायास उसकी स्मृति में ममतामयी मां की मूर्ति कौंध गयी, जो ऐसे अंधकार के क्षणों में उसे छाती से चिपकाये पड़ी रहती थी और एक क्षण के लिए भी अलग नहीं करती थी अंशुल के मुंह से अनायास निकला, ''मां! तू कहां है? मैं एकदम अकेला हूँ। क्या तुम अब भी मेरे पास नहीं आओगी?'' तभी याद आया मां तो उठने की स्थिति में नहीं थी और उस आवाज ने कहा कि, ''वह तो नहीं रही, फिर कैसे आएगी? वह नहीं आएगी।''[11]

सम्बद्धता और संगठनात्मकता

वृहदाकार उपन्यास होने के कारण इसमें घटनाओं की पर्याप्त विविधता है। अनेक कथाएं, उपकथाएँ एवं अन्तर्कथाएँ मुख्य कथा से मिली हुई है। फिर भी उसमें पारस्परिक सम्बद्धता है- कथा सूत्रों में बिखराव नहीं है। 'आशाशिशु' उपन्यास में कथा प्रसंग उलझाव भरा है, फिर भी यह उपन्यासकार का निर्माण कौशल है कि उसमें सक्षिंप्तता तथा संगठनात्मकता है। कोई भी प्रसंग स्वतन्त्र नहीं हो पाता। अंशुल देवर्षि नारद के द्वितीय जन्म की मुख्य कथा-प्रसंग से सभी प्रसंग सुसम्बद्ध है और उसकी मार्मिकता और स्वाभाविकता में अपना योगदान देते हैं।

स्पष्ट है कि 'आशाशिशु' उपन्यास कथावस्तु मौलिक भी है और पौराणिक व स्वाभाविक भी। उसके तीव्र संवेगात्मकता के साथ ही उत्सुकता भी है और कथा सूत्रों में परस्पर सम्बद्धता एव संगठनात्मकता भी है। व्यक्ति एवं समाज, देवता एवं ऋषिगणों का यथार्थ चित्र होने के कारण इसमें ये गुण स्वतः स्माविष्ट हो गए हैं, इसके लिए लेखक ने विशेष प्रयास नहीं किया है। उपन्यास का कोई भी अंश उठा लीजिए, ये गुण सहज ही में प्राप्त हो जायेंगे। अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कथावस्तु के आवश्यक गुणों की दृष्टि से 'आशाशिशु' एक सफल उपन्यास है।

संदर्भ ग्रंथ

डा0 रामलखन शुक्ल -*हिन्दी उपन्यास कला,* सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली 7
राजपाल, हिन्दी शब्दकोश- डा0 हरदेव बाहरी, राजपाल एण्ड संन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली
मुंशी प्रेमचन्द -*कुछ विचार*
डा. सूर्यनारायण द्विवेदी -*'आशाशिशु'*

Footnotes

[1]*हिन्दी उपन्यास कला,* पृष्ठ संख्या 15 (लेखक) डा0 रामलखन शुक्ल
[2]*कुछ विचार,* पृष्ठ संख्या 85 (लेखक) मुंशी प्रेमचन्द
[3]*उपन्यासकला : एक मूल्याकंन,* पृष्ठ संख्या 18 (लेखक) रामलखन शुल्क
[4]*दृष्टिपात- सरसरी निगाहों से देखना,* राजपाल हिन्दी शब्दकोष पृष्ठ संख्या 404 (डा0 हरदेव बाहरी)
[5]*'आशाशिशु'* (लेखक) सूर्य नारायण द्विवेदी, पृष्ठ संख्या 16
[6]*उपन्यासकला : एक मूल्याकंन,* पृष्ठ संख्या 18-19 (लेखक) डा. रामलखन शुक्ल
[7]*'आशाशिशु' उपन्यास* -(लेखक) सूर्यनारायण द्विवेदी, पृष्ठ संख्या 23
[8]*आशाशिशु* -(लेखक) डा0 सूर्यनारायण द्विवेदी, पृष्ठ संख्या 24
[9]*आशाशिशु* -(लेखक) डा0 सूर्यनारायण द्विवेदी, पृष्ठ संख्या 79
[10]*उपन्यासकलाः एक मूल्यांकन-* (लेखक) डा0 राम लखन शुक्ल, पृष्ठ संख्या 18
[11]*आशाशिशु* -(लेखक) डा0 सूर्यनारायण द्विवेदी, पृष्ठ संख्या 75

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) 8,16-19
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 06 सितम्बर 2014

परिवर्तन की प्रक्रिया क्रियान्वयन का उपाय

डॉ. संगीता जैन*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *परिवर्तन की प्रक्रिया क्रियान्वयन का उपाय* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *संगीता जैन* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

कहने वाला कहता रहता है और सुनने वाला सुनता रहता है, परिणाम कुछ भी नहीं निकलता। अध्यापकगण अपना पाठ पढ़ाकर, व्याख्यान देकर चले जाते हैं, परिणाम जगजाहिर है। इन सबका आखिर कारण क्या है? कहाँ है भूल चूक?

एक चूहे और उल्लू में मित्रता थी। एक दिन चूहे ने अपने मित्र उल्लू से कहा कि मित्र बिल्ली ने बहुत दुखी कर रखा है, बहुत परेशान हूँ, सदा डरा रहता हूँ, ना जाने कब राम नाम सत्य हो जाये। कोई उपाय बतलाओ। उल्लू ने कहा कि घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है, मेरे पास बहुत ही सटीक और सुन्दर उपाय है- तुम जंगली बिलाव बन जाओ। बस बिल्ली तुमसे डरने लगेगी और तुम निर्भय होकर रहोगे। चूहा बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा यह तो ठीक है मगर मैं बिलाव बनूँगा कैसे, यह तो बतलाओ। उल्लू ने कहा मित्र कैसी बातें करते हो, सब कुछ मैं ही करूँगा, तुम्हारी कोई जिम्मेदारी नहीं, उपाय मैंने बतला दिया, बाकी तुम जानो। बिलाब कैसे बनना है तुम जानो। मेरा काम तुम्हें उपाय बतलाना था, सो मैंने पूरा किया, अब उपाय का क्रियान्वयन तुम्हारे हाथ में है। तुम जानो तुम्हारा काम।

शिक्षा के क्षेत्र में ऐसा ही कुछ हो रहा है। अध्यापक कक्षा लेते हैं, अपना व्याख्यान देते हैं और बात समाप्त हो जाती है। विद्यार्थी की समझ में आया कि नहीं, इससे कोई सरोकार नहीं होता। विद्यार्थी को अन्य उपाय खोजने पड़ते हैं- कभी सहायक पुस्तक, तो कभी निजी कोचिंग। विद्यार्थी समझ का सहारा न लेकर रटने की ओर आकर्षित होता है। रटन के साथ समझ, तादात्म्य हो तो ही रटना सफल होता है।

वास्तव में क्रियान्वयन का मार्ग प्रशस्त नहीं है। केवल बड़ी-बड़ी बातें करने से कुछ होने वाला नहीं। हमें यह चुनौती स्वीकार करनी होगी, कि अध्यापक ने जो पढ़ाया है उसे कैसे रूपान्तरित करें, रूपान्तरण की प्रक्रिया अनिवार्य है, उसका सक्रिय अभ्यास आवश्यक है।

* रीडर, एडवांस्ड कॉलेज ऑफ ऐजूकेशन पलवल (हरियाणा) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

सफलता में समर्पण का महत्वपूर्ण स्थान है। जहाँ समर्पण नहीं वहाँ सफलता नहीं। लक्ष्य प्राप्ति हेतु दृढ़निश्चय अनिवार्य है। पूर्ण समर्पण-किसी प्रकार का तर्क वितर्क नहीं- केवल समर्पण। समर्पण भाव से छोटे से छोटा आदमी, बड़े से बड़ा कार्य करने में सफल हो सकता है। समर्पणहीनता शक्तिशाली को भी असमर्थ बना देती है, उसे नाकाम बना देती है। वह छोटे से छोटा कार्य करने में भी असमर्थ हो जाता है।

पौराणिक कथा है महाराजा कोणिक युद्ध कर रहे थे। पराजय का अंदेशा था और हार दिखाई दे रही थी। ऐसे में कोणिक इन्द्रदेव के प्रति समर्पित हो गये। कोणिक के लड़ने का कार्य इन्द्रदेव को सम्भालना पड़ा, स्थिति बदल गयी, लड़ने का कार्य इन्द्रदेव को सम्भालना पड़ा और कोणिक विजयी हुये। जब हम सत्य के प्रति समर्पित होते हैं, तो हमारी शक्ति सौ गुना हो जाती है। फिर जब लक्ष्य सामने होता है, विजय निश्चित है।

मूल प्रश्न है- बदलाव कैसे सम्भव है?

अन्दर देखना होगा। जब तक अन्दर नहीं देखेंगे, रूपान्तरण सम्भव नहीं।

डॉ काप्प ने अपनी पुस्तक, ''ग्लैंण्डस द इनविजिवल गार्जियन'' में लिखा है कि हमारी ग्रन्थियों का विशेष महत्व है। इनका सही उपयोग अनिवार्य है। अनिष्ट भावनायें एड्रिनल ग्रंथि को अतिरिक्त कार्य करने को बाध्य करती हैं, जिससे वह थक जाती है और शिथिल हो जाती है। अतिरिक्त भार थकान पैदा करता है।

भगवान महावीर ने कहा है, ''न भेतव्यं''; अर्थात् डरो मत। तुम अभय हो, तुम सबकुछ कर सकते हो। यह भावना कि मुझे कुछ नहीं आता, अपने मन से निकाल दो। तुम सबकुछ कर सकते हो। भय को अपने मन से दूर रखो। भय से एड्रिनल ग्रंथि सबसे ज्यादा प्रभावित होती है। उन्होंने यह भी कहा कि जो अभय नहीं होता, वह अहिंसक नहीं होता। मनुष्य भय के कारण ही विकृतियों को पालता है। भय सब बुराइयों की जननी है। भय से मुक्त होना दोषों से मुक्त होना है। भय प्रलोभन को जन्म देता है, असुरक्षा पैदा करता है। मन इन प्रलोभनों से लुब्ध हो रहा है। इन प्रलोभनों को विराम देना होगा, इन्हें भी विस्मृत करना होगा।

प्रश्न यही है कि रूपान्तरण कैसे संभव है? कैसे हो?

एकमात्र उपाय है- अर्द्धचेतन मन को सक्रिय करना, उसे जगाना।

हमारी ग्रंथि (ग्लैंण्ड्स) अर्द्धचेतन मन हैं अर्थात अर्द्धचेतन हैं। ये ग्रंथियाँ हमारे मस्तिष्क को प्रभावित करती हैं। इन ग्रंथियों को हमें सक्रिय करना होगा- ताकि हमें भय से मुक्ति मिले- हमारे आवेग समाप्त हों- हमारे आयाम को नया उल्लास मिले, हमें नई चेतना मिले।

शरीर का आलम्बन मन का आलम्बन है। मन पर कैसे नियंत्रण करें? मन की तीन अवस्थायें हैं- 1. समनस्कता, 2. अमनस्कता, 3. 'न समनस्कता- न अमनस्कता' -मानसिक तटस्थता या अमन।

समनस्कताः हमारा मन उसी प्रवृत्ति में संलग्न रहे, जिसे हम कर रहे हैं।

अमनस्कताः हम एक कार्य को कर रहे हैं, मगर हमारा मन कहीं और लगा हुआ है।

न समनस्कता - न अमनस्कताः समनस्कता या अमनस्कता में मन सदा रहेगा वो चाहे किसी भी प्रवृत्ति में लगा हो। आप अध्ययन कर रहे हैं मगर ध्यान-मन खेल में है। यह अमन की स्थिति है, मन तो है, वह अध्ययन में न लग कर खेल में है। अमन का होना 'न समनस्कता'। हमें अमन की और समन की भूमिका पर ध्यान देना होगा। मन को शुद्ध आलम्बन देना होगा। मन का भटकाव रोकना होगा, उसे एक दिशा-गामी करना होगा। विभिन्न दिशाओं में लगा मन, मन की धारा को प्रभावित करता है, उसकी गति को रोक देता है।

''मन की छाँव में ही, मान पनपता है, मन का माथा नमता नहीं,/ न-'मन' हो, तब कहीं, नमन हो, 'समन' को,/ इसीलिए मन यही कहता है सदा-/ नमन। नमन। नमन।।''(मूकमाटी 97)

एक यात्री को लम्बे सफर पर जाना था, रात अंधेरी थी, रास्ता लम्बा था, उसके मित्र ने उसे एक लालटेन दे दी और कहा कि इसकी रोशनी से तुम अपना रास्ता आसानी से पार कर पाओगे। यात्री ने देखा कि लालटेन का प्रकाश तो केवल चार पाँच फुट तक ही जाता है, जब कि उसे दस मील का बड़ा लम्बा सफर करना है। उसने अपने मित्र को कहा कि तीन-चार फुट का प्रकाश मुझे इतना लम्बा सफर कैसे करा पायेगा, मुझे तो दस मील तक सफर करना है। यह विधि को न जानने का

कारण है। यदि विधि को जानता तो तीन-चार फुट का प्रकाश उसे दस मील के सफर को आसान बना देता। आवश्यकता है विधि को जानने की; और विधि को जानना ही पर्याप्त नहीं है, उस पर अमल करना भी आवश्यक है। अपने संदेह को, कि मंजिल पर पहुँचूँगा या नहीं को विराम देना होगा। सफलता में समर्पण का महत्वपूर्ण योगदान है।

विद्यार्थी का अपने शिक्षक के प्रति समर्पण अनिवार्य है। जो समर्पित नहीं होता, उससे सफलता दूर रहती है। लक्ष्य प्राप्ति हेतु दृढ़निश्चय, समर्पण आवश्यक है। समर्पित भाव बड़े से बड़े कार्य को भी, सुविधापूर्वक कर लेता है। समर्पण में तर्क-वितर्क का कोई स्थान नहीं। अपने शिक्षक के प्रति पूर्ण निष्ठा, समर्पण आवश्यक है।

निष्ठा का अर्थ है, असफलता में भी पैर न डगमगायें- प्रयास चलता रहे। जब सफलता मिलती है तो निष्ठा गौण हो जाती है, सफलता स्वयं शिखर पर ले जाती है, मगर जब असफलता मिलती है तब निष्ठा ही साथ देती है।

''जो खिसकती-सरकती है, सरिता कहलाती है सो अस्थाई होती है। और/ सागर नहीं सरकता सो स्थाई होता है,/ परन्तु, / सरिता सरकती सागर की ओर ही ना। अन्यथा,/ न सरिता रहे, न सागर। यह सरकन ही सरिता की समिति है,/ यह निरखण ही सरिता की प्रमिति है, बस यही तो आस्था कहलाती है। आस्था छटपटाती रहती है, जब तक उसे चरण नहीं मिलते चलने को,/ और/ आस्था के बिना आचरण में आनन्द आता नहीं, आ सकता नहीं। फिर,/ आस्था वाली सक्रियता ही निष्ठा कहलाती है, यह भी बात ज्ञात रहे।'' (मूकमाटी 119-120)

प्रश्न होता है कि मन को प्रशिक्षित और अभ्यस्त कैसे किया जा सकता है?

मन को जागृत करने का एकमात्र उपाय है- जीवन की दिशा को बदलना, जीवन की गति को बदलना।

एडीसन एक प्रयोग कर रहे थे। उसके साथ बहुत से सहयोगी और विद्यार्थीगण भी इस प्रयोग में लगे हुये थे। सफलता हाथ नहीं आ रही थी। असफलता निराशा को जन्म देती जा रही थी। एडीसन के सहयोगी और विद्यार्थियों ने एक दिन कहा कि अब हम और समय इस प्रयोग पर खराब नहीं कर सकते। यह असम्भव लगता है। सात सौ बार प्रयोग करने पर भी सफलता दूर है। एडीसन एक महान वैज्ञानिक था। उसने अपने सहयोगियों को कहा कि कैसी बातें करते हो? हम सफलता के इतने करीब हैं। वास्तव में तुम्हें गणित ही नहीं आता। जो सात सौ त्रुटियाँ थीं वह तो खत्म हुईं, अब सफलता हमारे कदम चूमने को व्याकुल है। हम गलत पर विजय पाते जा रहे हैं और तुम सब हिम्मत हार रहे हो।

यह है निष्ठा।

अतः निष्ठा का अर्थ है पराजय में भी सफलता को तलाशना। हर के समक्ष और असफलता के समक्ष भी सफलता ही एक मात्र सूत्र है। असफलताओं के मध्य निखरी हुई सफलता होती है। श्रद्धा के बिना आरम्भ और निष्ठा के बिना अन्त सम्भव नहीं। यही नेति-नेति की प्रक्रिया है। यही निषेध का उपाय है। असल को असल की तरह जानते जाओ, जो शेष बचेगा वही सार है।

शिक्षा के क्षेत्र में 'प्रमाद, अकर्मण्यता और आलस्य' भी विघ्न हैं।

प्रमाद मोहक अस्त्र है। प्रमाद में लगता है कि सब कुछ जान लिया। अब जानने को कुछ भी शेष नहीं और यही प्रमाद विद्यार्थी को उसके लक्ष्यों से दूर कर देता है। जब प्रमाद, अकर्मण्यता और आलस्य आता है तो विजय की सम्भावना में भी विजय से वंचित रह जाता है।

एक राजा था। उसको अपना मंत्री नियुक्त करना था। नियुक्ति पूर्व उसने एक परीक्षा रखी। सात व्यक्ति परीक्षा देने आये। उसने सबको सम्बोधन किया कि आप सब यहाँ कमरे में बैठे हैं, मैं बाहर से ताला लगा देता हूँ। आपमें जो भी कमरे का ताला खोलकर बाहर आ जायेगा, उसे मंत्री बना दूँगा। सबने सुना और सोचा कि कितनी विचित्र परीक्षा है। बाहर से ताला बन्द है और अन्दर वालों को कह रहे हैं कि जो भी ताला खोल कर बाहर आयेगा, उसे मंत्री बनाऊँगा। यह कैसे संभव है? राजा का दिमाग खराब हो गया है। सात में से छह तो हार कर बैठ गये, कोई पुरूषार्थ नहीं किया। सातवां व्यक्ति अकर्मण्य नहीं था, पुरूषार्थी था। उसने सोचा अवश्य ही कोई न कोई राज होगा अन्यथा राजा इस प्रकार की शर्त नहीं रखता। मुझे अपना प्रयत्न करना चाहिये। वह उठा, दरवाजे के पास गया और उसे जोर से धकेला। दरवाजा खुल गया। राजा स्वागत हेतु दरवाजे के बाहर खड़ा था। दरवाजे पर कोई ताला नहीं था। राजा केवल देखना चाहता था कि कौन कर्मण्य है और कौन अकर्मण्य। पुरूषार्थ सबको करना चाहिये था। सफलता मिलती या नहीं ये बाद की बात थी। केवल इस बात ने

कि बाहर ताला लगा हुआ है, उसे कैसे खोल सकते है, उन्हें अकर्मण्य बना दिया। जिसने पुरूषार्थ किया, कर्मण्यता का परिचय दिया वह विजयी हुआ और मंत्री बन गया।

सदैव याद रहे कि सब कुछ संभव है। कर्मण्य और पुरूषार्थी के लिये, जबकि अकर्मण्य और अपुरूषार्थी को केवल निराशा व असफलता ही मिलती है। उपलब्धि के लिये प्रयत्न अनिवार्य है। प्रयत्न ही न हो तो उपलब्धि कैसे मिल सकती है? विद्यार्थी को हीन भावना को अपने मन में नहीं आने देना चाहिये, इससे प्रयत्न में शिथिलता आती है। हीन भावना से कुंठित व्यक्ति हार तो पहले ही मान लेता है, यह विजय की ओर तो एक कदम भी नहीं बढ़ाता। उसकी हार तो पहले ही निश्चित है, प्राप्ति की बात तो सर्वथा छूट जाती है।

हमें मानने के स्थान पर जानने पर ध्यान देना चाहिये। विशिष्ट उपलब्धियों के लिये सदा प्रयत्नशील होना चाहिये, बगैर इसकी चिन्ता किये ही वो हमें प्राप्त होती है या नहीं। हमारा पुरूषार्थ सदैव सही दिशा में लगना चाहिये। पुरूषार्थ हमारा सहयोगी बना रहे, इस बात का हमें सदैव ख्याल रखना चाहिये। प्रयत्न सदैव करते रहना चाहिये। मन की चंचलता पर काबू रखें, उसे भटकने न दें, ताकि हमारी शक्ति कम ना हो। शक्ति बनी रहे।

जीव का बड़ा लक्षण है -इच्छाशक्ति और संकल्पशक्ति। यह जीव की पहचान है। जिस मनुष्य में इच्छाशक्ति, संकल्पशक्ति नहीं वह जीव नहीं हो सकता। सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवों में भी, चाहे वो पृथ्वी से हो, चाहे वनस्पति से, उन सबमें इच्छाशक्ति और संकल्पशक्ति होती है। संकल्पशक्ति- एकाग्रता द्वारा नियामक शक्ति में रूपान्तरित हो जाती है।

भगवान महावीर ने आत्मा से लड़ने का उपदेश दिया है, ना कि बाहर लड़ने का। मोह और मूर्च्छा से लड़ो, विजय प्राप्त होगी। इस युद्ध में पीछे ना हटें, आगे ही आगे बढ़ते जाऐं। अपने पुरूषार्थ का पूर्ण उपयोग करें, अपनी शक्ति को पहचानें, उसे प्रयोग में लाऐं और जो भी बाधा बीच में आये, उस पर विजय पायें, उसे नष्ट करें, निराशा को दूर भगायें, सदा आशावान बनें, विजयश्री कदम चूमेगी।

''प्रत्येक व्यवधान का, सावधान होकर, सामना करना,/ नूतन अवधान को पाना है, या यूँ कहूँ इसे-/ अन्तिम समाधान को पाना है।'' (मूकमाटी 74)

सन्दर्भ

आचार्य महाप्रज्ञ -*किसने कहा मन चंचल है*
श्री रजनीश -*केवल्य उपनिषद्*
ओशो -*मरौ हे जोगी मरौ*
आचार्य विद्यासागर -*मूकमाटी*

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) 8,20-25
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 16 सितम्बर 2014

हिन्दी भाषा का विकास

पूनम रानी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *हिन्दी भाषा का विकास* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *पूनम रानी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

इस संसार में अनेक प्रकार के प्राणी पाए जाते हैं। वे अपने भावों की अभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार की ध्वनियों से करते हैं। हाथी चिंघाडकर, शेर दहाड़कर, पक्षी कूजकर और मक्खियाँ भिनभिना कर अपने प्रेम, क्रोध, ईर्ष्या, घृणा को व्यक्त करते हैं। संसार में मानव ही सबसे अधिक सौभाग्यशाली है कि उसे अपनी बात कहने के लिए भाषा का वरदान मिला हैं प्रत्येक मनुष्य अपने भावों की अभिव्यक्ति किसी-न-किसी भाषा के माध्यम से ही करता हैं भाषा के अभाव में न तो किसी सामाजिक परिवेश की कल्पना की जा सकती है और न ही सामाजिक व राष्ट्रीय प्रगति की।

विकास एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। चाहे विकास मनुष्य का है, चाहे भाषा का हो। जो भाषा का रूप कल (भूतकाल में कई सदियों पूर्व था) था वह आज नहीं क्योंकि प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक भाषाएँ एक जैसी नहीं है। जो भाषा का स्वरूप आज हमारे सामने है वह कल नहीं रहेगा। इस प्रकार हमारी भाषा यूरेशिया से निकलकर आर्यभाषाओं से होते हुए एक लम्बी यात्रा तय करते हुए पश्चिमी हिंदी का एक भेद खड़ी बोली आज की हिंदी के रूप में स्थापित है। आज यह हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा, कई राज्यों की राजभाषा, समाचार पत्रों की भाषा एवं आम बोलचाल की भाषा है जिसके विकास की गाथा को समझना आवश्यक है।

भाषा का अर्थ : 'भाषा' शब्द का संबंध 'भाष्' (बोलना) धातु से है अर्थात् भाषा का शब्दार्थ है- जिसे बोला जाए। किंतु मोटे रूप से उन सभी साधनों को भाषा कहते हैं, जिनके माध्यम से मनुष्य अपने विचारों को व्यक्त करता या सोचता है।

भाषा के माध्यम: भाषा एक विस्तृत संकल्पना है, जिसमें हम पाँच साधनों का उपयोग करते हैं- 1. दृष्टि (आँख), 2. स्पर्श (त्वचा), 3. गंध (नाम), 4. ध्वनि (वाग्यंत्र), 5. श्रवण (कान)।

* प्राध्यापिका (हिन्दी), एच. आर. ग्रीन फील्ड सीनियर सेकेण्ड्री स्कूल झाज्जर (हरियाणा) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

हम इन पाँचों साधनों में से किसी भी साधन का उपयोग करते हुए विचार या भाव सम्प्रेषण करने की क्रिया को भाषा कह सकते हैं।

भाषा की उत्पति

भाषा की उत्पति के विषय में सदियों से भाषा विदों की ही नहीं बल्कि जन सामान्य की भी रुचि रही है, क्योंकि यह एक रहस्य है। इस दिशा में अनेक शोध कार्य हो चुके हैं तथा आज भी अनेक विश्वविद्यालयों में इस पर गहन अध्ययन विश्लेषण व शोध-कार्य चल रहा है। परन्तु अभी इस दिशा में सर्व सम्मत् निष्कर्ष नहीं निकल पाए हैं। इस संबंध में अब तक अनेक मत व्यक्त किए गए है, जिनमें कुछ प्रमुख निम्नांकित हैं- (1) दैवी उत्पति सिद्धांत, (2) धातु सिद्धांत, (3) निर्णय सिद्धांत, (4) अनुकरण सिद्धांत, (5) मनोभावाभिव्यक्ति सिद्धांत, (6) यो-हे-हो सिद्धांत, (7) इंगित सिद्धांत, (8) सम्पर्क सिद्धांत, (9) समन्वित रूप, (10) टाटा सिद्धांत, (11) विकासवादी सिद्धांत, (12) संगीत सिद्धांत।

निष्कर्ष

भाषा की उत्पति संबंधी किसी एक विचार को सर्वसम्मति से मान्यता नहीं मिल पाई है। अतः भाषा की उत्पति अभी भी एक रहस्य ही है।

विश्व के भाषा खंड

सम्पूर्ण विश्व के चार भाषा खंड :

01. यूरेशिया खंड : यह सबसे बड़ा भाषा खंड है। इस खंड में नौ भाषा परिवार आते हैं- 1. भारोपीय, 2. आस्ट्रो-एशियाटिक, 3. हैमेटिक - सेमेटिक, 4. चीनी, 5. मलय-पालिनेशियन, 6. काकेशियन, 7. द्रविड, 8. यूराल-अल्टाई, 9. जापानी-कोरियाई।

02. अफ्रीका खंड : इसमें मुख्यतः चार भाषा परिवार हैं- 1. बांटू, 2. सूडान, 3. बुशमैन, 4. हैमेटिक-सेमेटिक।

03. प्रशांत महासागरीय खंड : इसमें मुख्तयः मलय-पालिनेशियन परिवार हैं। कुछ लोग इसे कई परिवारों का समूह मानते हैं।

04. अमेरिका खंड : अमेरिका के आस-पास के क्षेत्रों में बोली जाने वाली भाषाओं के परिवार इसमें शामिल हैं। 1. उत्तर अमेरिकी भाषा परिवार, 2. मध्य अमेरिकी भाषा परिवार, 3. दक्षिणी अमेरिकी भाषा परिवार।

उक्त खंडों को यदि मोटे तौर पर देखें तो इन चारों खंडों में जो भाषा परिवार शामिल हैं वे बहुत छोटे-छोटे हैं। अतः अधिकाशं भाषा विज्ञानी विश्व के 12 भाषा परिवारों को ही वर्गीकरण हेतु शामिल करने के पक्ष में रहे हैं।

यूरेशिया खंड का भारोपीय परिवार और इसके दस प्रकार :

भारतीय आर्य भाषा

भारत में आर्यों के आने के बाद से उनकी भारतीय आर्य भाषा का इतिहास शुरू होता है। इससे पहले उन लोगों के संबंध में कुछ जानकारी अपेक्षित है, जो आर्यों के आने के पूर्व भारत में आ चुके थे।

आर्यों के पूर्ववर्ती भारतीय आर्यों के आने से पूर्व भारत में कौन-कौन सी जातियाँ रहती थी। यह प्रश्न भी प्रस्तुत प्रसंग विचारणीय है, क्योंकि उनकी भाषाओं ने हमारी भाषिक धारा को विभिन्न स्तरों पर अनेक प्रकार से प्रभावित किया है। आर्यों के पूर्व आने वाली जातियों में प्रमुख निम्नांकित चार हैं :

नेग्रिटो : यह प्राचीनतम जाति है, जिसका भारत भूमि पर पता चलता है। नेग्रिटो मूलतः अफ्रीका के निवासी थे और ये दक्षिणी अरब, ईरान होते हुए भारत आए थे। ये लोग काले, घने बालों वाले तथा चौड़ी नाक वाले थे। ये बिल्कुल ही असभ्य थे।

आस्ट्रिक : नेग्रिटो लोगों के बाद आस्ट्रिक आए। पहले लोगों का यह विचार था कि ये लोग दक्षिणी चीन तथा उत्तरी हिंदचीन के निवासी थे तथा असम के रास्ते भारत में आए थे, किंतु अब इनका मूल स्थान भू-मध्यसागर माना जाता है। ये इराक, ईरान होते हुए भारत आए। आस्ट्रिक काले, चौड़ी नाक वाले, मझोले कद के तथा लंबे कपाल के थे। भारत की कोल, मुंडा, खासी, मोनख्मेर आदि भाशाएँ इन्हीं की है।

किरात : आस्ट्रिक लोगों के बाद किरात भारत में आये। ये आदि मंगोल थे। इन्हीं की एक शाखा चीनी सभ्यता एवं संस्कृति का निर्माता बनी। इनकी एक शाखा ब्रहमपुत्र के रास्ते भारत आई। यजुर्वेद तक में इनका उल्लेख मिला है, जिससे पता चलता है कि ये लोग बहुत पहले आ चुके थे। अब ये लोग केवल हिमाचल प्रदेश, नेपाल, भूटान, असम, मणिपुर तथा उत्तरी बंगाल में है। इनकी प्रमुख भाषाएँ मेइथेइ, नगा, कचिन, गारो, बोड़ो, लोलो, लेपचा, कुकचीन तथा नेवारी आदि है।

द्रविड़ : इनका मूल निवास स्थान अफ्रीका माना गया है वहाँ से ये लोग भू-मध्यसागर आए और फिर ईरान, अफगानिस्तान से लेकर पूर्वी भारत तक फैल गए। भारत में ये लोग 4000 ई0पू0 के आद आए। आज तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम के अतिरिक्त तुलु, कोडगु, कोलामी, टोडा, गोंड, खंद (उडिसा) औरावँ (बिहार) आदि इनके वृहत भाषा क्षेत्र के अवशेष है।

भारत में आर्यों का आगमन

ऐसा माना जाता है कि भारतीय आर्य, ईरानियों एवं दरद लोगों से अलग होकर 1500 ई0पू0 के आस-पास परिश्चमी एवं पश्चिमोत्तरी सीमा से भारत में आए। पूर्ववर्ती आर्य मध्य देश में आ बसे थे। बाद में आने वाले आर्यों ने आकर उनका स्थान ले लिया और पूर्वागतों को उत्तर, दक्षिण, पश्चिम, पूरब में धकेल दिया। इसे आर्यों के आगमन का 'पच्चह सिद्धांत' कहते हैं। हार्नले के अनुसार ये परवर्ती आर्य ही वैदिक संस्कृति के निर्माता थे। नृवैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर रमाप्रसाद चंद भी लगभग इसी प्रकार के बाहरी-भीतरी शाखा के निष्कर्ष पर पहुँच थे। उनके अनुसार भीतरी शाखा के लोग लंबकपाली प्रजाति के हैं तो बाहरी शाखा के लोग लघुकपाली प्रजाति के। प्रथम वैदिक संस्कृति के अधिष्ठाता थे, तो दूसरे वैष्णव एवं शाक्त धर्म के।

प्राचीन आर्य भाषा

भारत में आर्य भाषा के प्रारम्भ का बहुत निश्चित काल देना तो सम्भव नहीं है किंतु मोटे ढ़ंग से यह माना जा सकता है कि 1500 ई0पू0 के आस-पास से इसका प्रारम्भ होता है।

भारतीय आर्यभाषा का काल विभाज्य

(क) प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ (1500 ई0पू0 - 500 ई0पू0), (ख) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ (500 ई0पू0-1000 ई0), (ग) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ (1000 ई0-अब तक)

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा : वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत।

वैदिक संस्कृत : वैदिक साहित्य की भाषा यही है। इसमें वेदों की रचना की गई। इसका समय 1500 ई.पू. से 800 ई. पू. तक है। इसका आगे विकास नहीं हुआ।

लौकिक संस्कृत : इसी को संस्कृत का नाम दिया गया। रामायण, महाभारत, पंचतंत्र की रचनाएँ इसी भाषा में की गई।

मध्यकालीन आर्य भाषा : पालि, प्राकृत, अपभ्रंश।

पालि : पालि भाषा का समय मोटे रूप से 500 ई.पू. से 1 ई. तक है। इस भाषा को कभी-कभी प्रथम प्राकृत भाषा भी कहते हैं। बोद्ध धर्म के 'धम्म' पद आदि ग्रंथ इसी भाषा में हैं।

प्राकृत : इसका समय 1 ई. से 500 ई. तक अर्थात् 500 वर्षों का है। इसे द्वितीय प्राकृत भाषा भी कहते हैं। यह पूरे उत्तर भारत में बोली जाती थी।

अपभ्रंश : इसका समय 500 ई. से 1000 ई. तक का है। इसे तृतीय प्राकृत भी कहते हैं।

अपभ्रंश से विकसित आधुनिक भाषाएँ तथा उप-भाषाएँ- 1 शौरसेनी; 1.1 पश्चिमी हिंदी, 1.2 राजस्थानी, 1.3 गुजराती। 2 पैशाची; 2.1 लहँदा, 2.2 पंजाबी। 3 ब्राचड़; 3.1 सिंधी। 4 महाराष्ट्री; 4.1 मराठी। 5 मागधी; 5.1 बिहारी, 5.2 बंगाली, 5.3 उड़िया, 5.4 असमिया। 6 अर्धमागधी; 6.1 पूर्वी हिंदी। 7 खस; 7.1 पहाड़ी।

भाषा, उपभाषा और बोलियाँ :

भाषा	उपभाषा	बोलियाँ
हिन्दी	पश्चिमी हिन्दी	खड़ी बोली (कौरवी), ब्रजभाषा, बुन्देली, हरियाणवी (बांगरू), कन्नौजी
	पूर्वी हिन्दी	अवधी (कोशल, वैशबाड़ी), बघेली, छत्तीसगढ़ी
	राजस्थानी	मारवाड़ी, मेवाती, जयपुरी, मालवी
	पहाड़ी	कुमायूँनी, गढ़वाली
	बिहारी	भोजपुरी, मगही, मैथिली

आधुनिक भाषा का क्रमिक विकास

1. आदिकाल : डिंगल (अपभ्रंश और राजस्थानी), पिंगल (अपभ्रंश और ब्रजभाषा का प्रयोग)।

2. भक्तिकाल : 2.1 सगुण भक्ति काव्य; 2.1.1 राम भक्ति शाखा- अवधि भाषा, 2.1.2 कृष्ण भक्ति शाखा- ब्रज भाषा।

*2.2 निर्गुण भक्ति काव्यः 2.*2.1 प्रेमाश्रयी- अवधि भाषा, 2.2.2 ज्ञानाश्रयी- सधुक्कड़ी या खिचड़ी।

3. रीतिकाल : ब्रज भाषा।

4. आधुनिक काल : खड़ी बोली

भारतेन्दु पूर्व हिंदी गद्य में हिंदी का विकास

1800 ई. में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से हिंदी गद्य का आविर्भाव होता है। फोर्ट विलियम के हिन्दुस्तानी के प्रोफेसर गिल क्राइस्ट की प्रेरणा से हिंदी में आरंभ हुआ। जिसके अंतर्गत लल्लू लाल ने 'प्रेमसागर' तथा सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा। इससे पूर्व गद्य के नमूने ब्रजभाषा में मिलते हैं जिनमें गोकुल नाथ की 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवन' की वार्ता उल्लेखनीय है।

खड़ी बोली गद्य के प्रारंभिक दर्शन अमीर खुसरो की रचनाओं में होते हैं।

17 वीं शताब्दी में : अकबर के दरबारी कवि गंग की रचना 'चंद छंद बरनन की महिमा' में खड़ी बोली के दर्शन।

18 वीं शताब्दी में : राम प्रसाद निरंजनी का 'भाषा योग वाशिष्ठ' तथा दौलत राम का 'पदम पुराण' खड़ी बोली गद्य का एक अच्छा उदाहरण है।

19 वीं शताब्दी में : हिंदी के खड़ी बोली गद्य के प्रवर्तन में चार नाम प्रमुख हैं। वे हैं- फोर्ट विलियम कॉलेज से संबंधित लल्लू लाल (प्रेमसागर), सदल मिश्र (नासिकेतोपाख्यान), सदासुख लाल (सुखसागर), इंशा अल्ला खाँ (रानी केतकी की कहानी)।

आधुनिक काल

1. भारतेंदु युग- ब्रजभाषा/ खड़ी बोली का प्रयोग (1857 ई. से 1900 ई.), 2. द्विवेदी युग- खड़ी बोली का प्रयोग (1900 ई. से 1920 ई.), 3. छायावादी- खड़ी बोली का प्रयोग (1920 ई. से 1935 ई.), 4. प्रगतिवाद- खड़ी बोली का प्रयोग (1935 ई. से 1943 ई.), 5. प्रयोगवाद/ नयी कविता- खड़ी बोली का प्रयोग (1943 ई. से 1960 ई.), 6. समकालीन कविता- खड़ी बोली का प्रयोग (1960 ई. से.....)

साठोत्तरी (सन् 1960 के बाद की) कविता को अनेक नाम दिए गए जिनमें प्रमुख है- साठोत्तरी/ समकालीन/ अकविता/ अभिनव/ बीट/ युयुत्सावादी/ अस्वीकृत/ अति/ सहज/ निर्दिशायामी।

7. हिंदी नवगीत परम्परा

काव्य के क्षेत्र में नवगीत परम्परा का आरंभ डॉ शम्भूनाथ सिंह 1960 ई. के उपरांत स्वीकार करते है। उनके अनुसार 'अज्ञेय' जी ही नवगीत परम्परा के सूत्रधार थे। सच तो यह है कि नवगीत नई कविता का गीतात्मक रूप है। यही गीतात्मकता जब नई कविता से जुड़ गयी तो नवगीत कही जाने लगी।

राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद तथा राजा लक्ष्मण सिंह की उर्दू-हिंदी संबंधी विरोधी खेमेबाजी ने भी परोक्ष रूप से खड़ी बोली गद्य का मार्ग प्रशस्त किया।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी भाषा समय के परिवर्तन के साथ-2 अनेक मोड़ पार करती हुई निरन्तर अपने विकास पर आगे बढ़ी। जिसके विकास को निम्नलिखित प्रक्रिया द्वारा दर्शाया गया है :

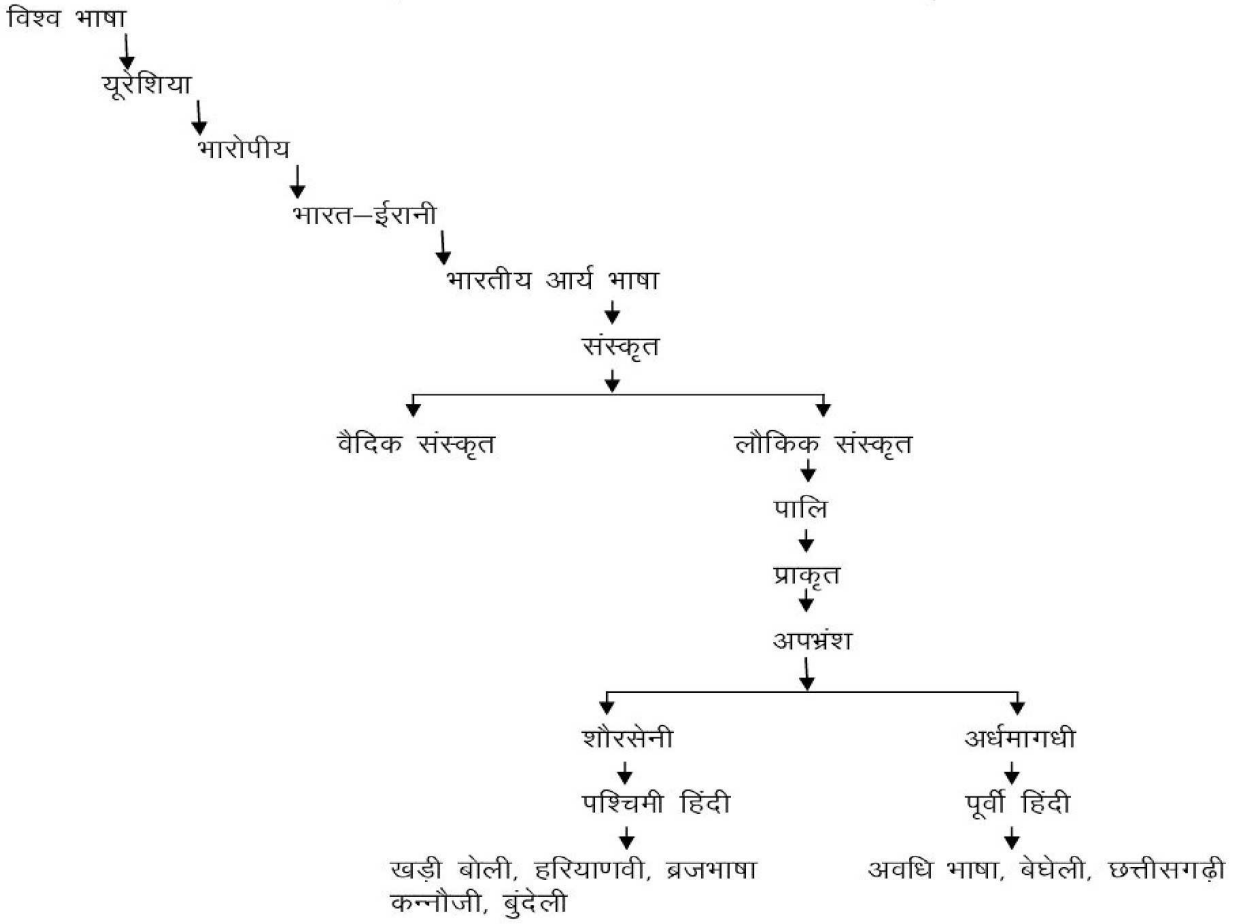

सन्दर्भ ग्रंथ

डॉ कर्ण सिंह -भाषा विज्ञान
डॉ जयन्ती प्रसाद नौटियाल -भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा, अध्याय -1, पृष्ठ संख्या 1
वही, पृष्ठ संख्या 16
वही, पृष्ठ संख्या 35
वही, पृष्ठ संख्या 36
वही, पृष्ठ संख्या 46
डॉ जयन्ती प्रसाद नौटियाल -भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा, अध्याय -1, पृष्ठ संख्या 307
वही, पृष्ठ संख्या 308
डॉ जयन्ती प्रसाद नौटियाल -भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा, अध्याय -1, पृष्ठ संख्या 309
भोला नाथ तिवारी -भाषा विज्ञान (इक्यानवाँ संस्करण-2007)
वही, पृष्ठ संख्या 108
वही, पृष्ठ संख्या 132
भोला नाथ तिवारी -भाषा विज्ञान, पृष्ठ संख्या 138
वही, पृष्ठ संख्या 140
वही, पृष्ठ संख्या 141
भोला नाथ तिवारी -भाषा विज्ञान, पृष्ठ संख्या 116
स्वयं के अध्ययन पर आधारित जानकारी

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) 8,26-30
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 17 सितम्बर 2014

गोंडी बोली के लोकगीतों में रामकथा संदर्भ

डॉ. कला जोशी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *गोंडी बोली के लोकगीतों में रामकथा संदर्भ* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *कला जोशी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

आदिवासी लोक संस्कृति का रामकथा से नाता बहुत समय से है, कहा जा सकता हैं राम के समय से ही है। आदिवासी समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले निषादराज, शबरी और केवट आदरणीय पात्र हैं। इसी आदिवासी समाज की गोंड जनजाति मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में निवास करती है। गोंड जनजाति का साहित्य और संस्कृति उन्हीं के समान सहज है। अपने आसपास की अनुभूति को सहेजकर भरपूर जीना अपना धर्म मानने वाली इस जनजाति का साहित्य अलिखित है और पीढ़ी दर पीढ़ी गीत, कहावतें इनकी परम्पराओं के माध्यम से जीवित हैं। गोंड जनजाति अपने इष्टदेव, कुलदेव, बड़ादेव एवं अन्य देवी- देवताओं में पूर्ण विश्वास रखते है। वैसे तो गोंड जनजाति हिन्दू देवों में 'शिव' पर विशेष आस्था रखती हैं। फिर भी राम कथा के विविध संदर्भ उनके लोकगीतों में है। छत्तीसगढ़ी के ही समान गोंडो में भी लक्ष्मण की प्रतिष्ठा जति (यति), के रूप में है। लक्ष्मण की सत परीक्षाओं का लोक गाथा 'रामायणी' में गायन किया जाता है। रामायणी गाथा रामकथा पर आधारित है। इस गाथा का नायक लक्ष्मण है। इस शोध पत्र में राम जन्म, श्रवण कथा, मेघनाद बध, वनगमन, लक्ष्मण की सतपरीक्षा आदि प्रसंगों को लोकगीतों से लिया गया है। श्रुति परम्परा से प्राप्त ज्ञान और अनुभव को अनुस्यूत कर गोंडों ने अपनी तरह से इन कथाओं को लोकगीतों में समाहित किया है।

रामायणी लोकगाथा की वाचिक परम्परा में महाभारत की कथाएँ भी मिला दी गई हैं। लोकगायकी में मौजूद इस कथा में सीता रामचन्द्र से लक्ष्मण की शिकायत करती हैं। वे लक्ष्मण को किसी युवती के साथ देखकर अभी-अभी लौटी है। वे उलाहना देती हैं लक्ष्मण तुम्हारा भाई हैं तुम्हें उसके विवाह की चिंता नहीं है। वह अपने सत से विचलित हो गया है। राम अपने दरबारियों को बुलाते हैं और उनके साथ डूंडा महल लक्ष्मण को देखने जाते हैं इस प्रसंग में गोंड लोकगीत में महाभारत काल के पात्र भीम भी उपस्थित है। हो सकता हैं काल का अंतराल और रामकथा-महाभारत की कथा का गड्ड-मड्ड हो जाना महज श्रद्धेय पात्रों का उनके कामों का स्मरण भर हो। लक्षमण के सत की परीक्षा लोकभाषा में अनूठा एवं अद्भुत प्रयोग है। यह परीक्षा

* शास. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय इन्दौर (मध्य प्रदेश) भारत। E-mail : prof.kalajoshi@yahoo.com (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

एक बार नहीं बार-बार ली गई। ''अब चले हवै भीम मर्दान रे दादा/ पाँच-पाँच कोस के एक-एक डग धरथै भाई। डोंगरी पहारन ला कूदत जाथै रे दादा/ अब उठे है, कचहरी/ सजे हवैं रामचन्दर/ चले हवैं राजा रामचन्दर/ सब संग चले हवे सीता चल दैन्हें सभी रे देवता/ चल दैन्हे सभी रे महाराजा/ चल दैन्हे नारद रे मुनी/ चल दैन्हे बासुक रे राजा/ चल दैन्हे फौज अर फटाका।''

सभी लोग राम-सीता के साथ डूण्डा महल पहुँचते हैं। रात दिन के मंजिल मार के पहुँच गैन हें डुंडा महल मा। टोर के केंवार घुस परे हैं रामचन्दर। जैन समय पर देखे हैं, लछमन पलका मा सोय रही से, कोठा मा लरकिन के कपड़ा लत्ता, गहना, जेवर, टिकली, तरकी सब बिखरे परे हैं, ना सम्मत मा रामचन्दर सोच मा परगए हवै। कहथै। एला काहिन भै गैसे। ब्याह करेला कहतिस ते ब्याह रच देती। लमसेनी करेल कहतिस से लमसेनी रखाय देती। अखर या औगुन ले आय गैस। इतना कहके घर के हाथ जैन समय या जब नहि झटकोर है। झक ने नीन खुल गै लछमन के। आँखी खोलके देख थे। ए दादा! इन सम झन कैसे मा आय गैन। आँखन ला भींजथे। कहूँ सपना में देखत होऊँ कहके। भकुआय गैहे लछमन, नहिं आय टिकाना।

''अब झर-झर रोथै/अब थर थर कैंपथै/ कैसे करो दादा/ साम्हू हवै भाई/ पीछू हैं भौजाई/ ठाढ़े हैं सब देवता/ कौरा और पंडवा/ कोठा मा बिथरे/ टूरिन के गहना/ कहाँ ले आइन/ कौन लाइस इनला/ नहिं सोच पावे/ ठाढ़े ठाढ़ रोथे।''

लक्ष्मण के आस-पास लड़की के कपड़े, गहने आदि पड़े हैं। लक्ष्मण इसे इंदर कामनी का छल कहते हैं। अब इसके पश्चात गाथा में लोहरीगढ़ के लोहामहल में लक्ष्मण को बंद कर दिया और चारो ओर से ढ़ेर सारी लकड़ियों से उसे घेर कर आग लगा दी गई ताकि लछमन के सत्य की अग्नि परीक्षा ली जा सके। अंत में भीम उसे महल के दहकते लोहे पर पानी डालकर उसके कपाट खोलता है। लक्ष्मण उस लौह महल से सही सलामत निकलता है। ''अब पूरी भैगै सत के परिच्छा/ खरा उतरिन लछमन/ सत धारी लछमन/ बरत धारी लछमन।''

गोंडी के लोकगीतों में रामकथा के विविध संदर्भ सोहर, दादरा, विवाह गीत, विलाप गीतों में मिल जाते है। रीना और सैला गीतों में राम का सुंदर चित्रण किया गया है। एक सैला गीत में अयोध्या के राजा मर्यादा पुरूषोत्तम रामचन्द्र जी के नीले रंग का घोड़ा है, रामजी उस पर सवार हैं उनके हाथों में सोने की लगाम हैं, ''राजा राम के लीली बछेड़ा/ सोनम के करिहारी के/ सांय सांय घोड़ा भागय/ जेखर लम्बे छाती रे।''

श्रवण कथा के संदर्भ में- दशरथ के बाण से घायल श्रवण कुमार राजा से कहता हैं हम अपने बूढ़े अंधे माँ-बाप को कावड़ में बिठाकर तीरथ कराने निकले थे तुमने बान चला दिया। उसकी करूण पुकार इन शब्दों में व्यक्त हुई है, ''निकारो राजा छाती से बान हमारी/ दाई दादा ला कंवरी मा धर के/ बन का राह निहारी/ निकारो राजा छाती...../ ले तुमड़ी जल बोर के लाओ/ पीअब दोनों परानी/ निकारो राजा छाती...../ श्रवण बोलैय कोमल वानी/ बाण के सैंया सम्हारी/ निकारो राजा छाती...../ मृग जान दशरथ बाण मारे/ हाय हाय राम पुकारी। निकारो राजा छाती....।''

हे राजन! मेरे सीने में बाण लगा हैं इसे आप निकाल दीजिये। (दाई-दादा) अपने पिताजी व माताजी को काँवड़ में बैठाकर श्रवण कुमार ने तीर्थ यात्रा के लिए जंगल की राह पकड़ ली है। बेटा श्रवण कुमार हम प्यास से व्याकुल हो रहे हैं। तुम तूमड़ी लेकर जाओ उसमें जल भरकर ले आना। हम पति-पत्नी दोनों पानी पियेंगे। इतनी बात सुनकर श्रवण कुमार कोमल वाणी से समझाकर पानी लेने चला जाता है। राजा दशरथ जी हिरण समझकर धोखे से श्रवण कुमार के सीने में बाण आर-पार कर देते हैं। श्रवण कुमार घायल होकर तड़फते हैं।

इसी कथा को पूर्व प्रसंग में श्रवण तूमड़ी में पानी भर रहे हैं। पानी भरने की बुड़-बुड़ की आवाज को हिरण की आवाज सुन दशरथ बाण चला देते हैं। इसका वर्णन विलाप गीत में है। इसमें दशरथ माता-पिता को पानी देते हैं तो वे अंधे होने के बावजूद अनुमान लगा लेते हैं कि यह उनका बेटा नहीं है।

''सागर तलाब मेरे श्रवण पानी भरैय/ बुड़-बुड़ तूमी बाजैय, तूमी शब्द सुनके,/ दशरथ जी बाण मारैय, राम कहत श्रवण, गिरैय रे/ डुम-डुम तूमी बाजैय छाती मा लागैय बाण ओहो हाय,/ हे राम कहिके रे, कहाँ निकल गये प्राण रे,/ राम कहत श्रवण गिरेय रे सागर.....गिरैय।। धरे तुमड़िया पानी के दशरथ जल भर लाया ओहो हाय,/ पानी हाथन देत है मुँह नहि बुलवाया रे,/ राम कहत श्रवण गिरैय रे सागरे.....गिरैय,/ तैय तो होवे भूत पेरेत हमरो नहोस लाल ओहाय,/ अंधरा अंधरी श्राप दे वो हो जाही जिव के काल,/ राम कहत श्रवण गिरैय.....सागर.....गिरैय।।''

सघन जंगल में एक बड़ा तालाब था। श्रवण जी तुमड़ी से पानी भर रहे थे जिसकी आवाज पानी भरते समय बुड़-बुड़ हो रही थी। तुमड़ी की आवाज को सुनकर दशरथ जी ने बाण मारा। श्रवण जी गिर पड़ते हैं। बुड़-बुड़ तुमड़ी की आवाज बजते ही सीने में बाण लग गया और श्रवण जी प्राण त्याग देते हैं, दशरथ जी तुमड़ी में पानी भरकर हाथ में देते हैं, लेकिन मुख से नहीं बोलते हैं। अंधा-अंधी कहते हैं कि तुम मुख से क्यों नहीं बोलते हो तुम भूत प्रेत शैतान होगे, हमारे लाल नहीं हो, बताओ? नहीं तो हम तुम्हें श्राप दे देंगे। तुम्हारा भी सत्यानाश होगा।

राम-लक्ष्मण और सीता की पहचान कैसे हो? इसे उनके धारण किए अस्त्र-शस्त्र और आभूषण से ही पहचाना जा सकता है। ''कैसे चीन्हो रामे और लखन जा कि सुआ हो/ कैसे के चीन्हो सीता भाई...../ धनुष धर चीन्हो रामे और लखनलाल कि सुआ हो/ मुकुट मा चीन्हो सीता भाई...../ री रीना कि सुआ हो री री ना रीहल आय।''

राम जो हैं उन्होंने धनुष टांग रखा है। लक्ष्मण के पास बाण है और वे जो मुकुट लगाये हैं वे सीता जी हैं ओ री री ना। गोंडो में देवी की महत्ता हैं इसीलिए वे सीता को मुकुट से सज्जित देखते है।

वनवास की बात सुनकर अयोध्यापुरी उदास हैं राम, के बिना अयोध्या का क्या होगा? सीता के बिना रसोई भी सूनी हो जायगी। लोकगीत में कहा जा रहा है कोई तो राम को रोक ले वन जाने से। कोई तो उन..... मनाकर लौटा लाए।

''वन को चले रघुराई/ उन्हें कोई लाओ रे मनाई/ भीतर रोवे माता कौशल्या/ बाहर लक्ष्मण भाई/ राम बिना मोरी सूनी अयोध्या/ लक्ष्मण बिन ठकुराई/ सिया बिना मोर सूनी रसोइया/ कौन करें चतुराई।''(श्री बाबूराम मरकाम से संकलित डिडोरी हा.मु. आकाशवाणी, इंदौर)

वनवास प्रसंग के अन्य लोकगीत में उनके जन्म स्थान, माता-पिता का नाम का भी उल्लेख किया गया है। ये वे राम हैं जिन्होंने रावण से लड़ाई की है। इस छोटे से लोकगीत में रामकथा जन्म, अहल्या मुक्ति, सीता हरण, सीता की खोज, लंका युद्ध, रावण वध का प्रसंग समाहित है।

''री रीना रीना री हल रीना हे नारे सुआ हो/ री री ना री ना री हल रीना आय।। अवधपुरी मा जन्म लैये है कि सुआ हो/ राम लखन भगवानकि सुआ हो।। माता उनखे माता कौशल्या कि सुआ हो/ पिता है दशरथ राज। री.../ रामैय लखन के चरण कमल से कि सुआ हो। तरगैइने अहल्या नारी/ री...../ पंचवटी मा सीता चोरी होवैय कि सुआ हो/ राम लखन हैं उदास/ री...../ राम लखन के सेवक बनके कि सुआ हो/ अंजनी के पुत्र हनुमान/ री...../ बांदर के सेना बनके दोऊ भैया कि सुआ हो/ लंका में करत हैं युद्ध लराई। री...../ दशो शीष अर बीस भुजा कि सुआ हो। मार गिराय भगवान/ री रीना.....।''

अयोध्या में भगवान श्रीराम व लक्ष्मण जी का जन्म हुआ है। उनकी माता का नाम कौशल्या है, पिता राजा दशरथ हैं। राम लक्ष्मण के चरण कमलों से ही अहल्या को मोक्ष प्राप्ति हुई है। पंचवटी में माता जानकी जी का हरण हुआ। राम लक्ष्मण दोनों भाई दुखी हैं। राम लक्ष्मण के सेवक बनकर अंजनी पुत्र हनुमान जी ने सीताजी की खोज की। हनुमान व उनकी वानर सेना के साथ दोनों भाई लंका में युद्ध करते हैं। युद्ध में सिर व बीस भुजा वाले रावण को भगवान श्री रामचन्द्र जी मारकर गिरा देते हैं।

राम वनगमन की एक अन्य छटा लोकगायकी में शब्द चित्र उपस्थित कर देती है, ''कैसे के घरो मनधीर हो/ कोनैय शली होके रामा निकल गये/ आगू-आगू राम चलत हैं/ पाछू से लछमन भाई हो। कोनैय/ जिन खेर बीच मा सीता जानकी/ शोभा बरन नहीं जाई हो/ कोनैय...../ झिरमिट झिरमिट पनिया बरसे/ पवन चले पुखाई हो। कोनैय/ कौन बिरजतरी डाढे हो ही/ शमैय लखन दोऊ भाई हो। कौनेय.....।''

मैं अपने मन को किस तरह समझाऊ पता नहीं किस रास्ते से भगवान श्री रामचन्द्रजी निकल गये। आगे-आगे श्री रामचन्द्र जी चल रहे थे। पीछे छोटे भाई लक्ष्मण जी थे। जिनखर (जिनके) मध्य में माता जानकी जी चल रही थी जिनकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। श्री रामचन्द्र जी के चलते समय रिमझिम-रिमझिम वर्षा हो रही थी। हवा (पुखाई) पूर्व दिशा से चल रही थी। न जाने अभी इस समय दोनों भाई इस तरह की वर्षा और शीत लहर में किस झाड़ के नीचे खड़े होंगे।

एक विरहा गीत में राम, लक्ष्मण और हनुमान का लंका में चित्रण किया गया है। हनुमान ने कूद-कूद कर लंका में आग लगा दी है राम ने तो सेतु समुद्र पर बनाया है उसकी सात धाराओं में से किसी एक धारा से वह तर जाएं।

''ओए राम रे गाई लेवे, राम धरैय धन ही/ लक्ष्मण धरैय बाण, गढ़ लंका का गढ़ लंका मा/ होरी खैलेय हनुमान गढ़ लंका मा रे दोस। सेतु समुंदर के हवैय सातो धारा धीरे गायले/ रामजी के कृपा को ही, ओही लगाही पार। राम धैरेय. ....।''(कला बाई कुसराम से संकलित)

धनुष धारी राम और बाणधारी लक्ष्मण है। राजा रावण की सोने की लंका में हनुमान जी आग की होली कूद-कूदकर खेल रहे हैं। इस होली में लंका जल रही है। समुद्रउ पार करने के सेतु बनाया हैं राम ने। इसमें सात धाराएं हैं राम जी को कृपा से ही इसके पार जाना है

वनवास में सीता का हरण हो जाता है। सीताहरण से राम, लक्ष्मण, हनुमान, अंगद और अन्य वनवासी दुखी हैं, चर्चारत् हैं। सीता लंका में रो रही है। आखिर में हनुमान सीता को खोज निकालते हैं। लंका दहन होता है। फिर राम युद्ध के लिए समुद्र पर पुल बनाते हैं रीना गीत में इसका सुन्दर वर्णन हैं, ''तारा ना को ना री ना मोर ना ना गा/ चित्रकोट का लक्ष्मण अड़गैय, अवघट में भगवान/ गा दशो महल मा अंगद अड़गैय, किला ऊपर हनुमान/ बहदो भैच रो झैच रोगा दशो महल मा। जारा मनालेवय सीता जानकी के कारण गा। दशो महल मा अंगद.....हनुमान।। खेल भड़ावैय सीता जानकी के कारण गा। दशो महल मा अंगद.....हनुमान।। लंका मा आगी लगावैय सीता जानकी के कारण गा। दशो.....हनुमान/ सेतु पुल बाँधावैय सीता जानकी के कारण गा। दशो महल मा अंगद.....हनुमान।।''

चित्रकोट धाम में लक्ष्मणजी खड़े हैं। नदी के उबड़-खाबड़ घाट में रामचन्द्रजी विराजमान हैं। दसोमहल लंका में अंगद जी व सोने के किले में हनुमान जी हैं। सीताजी सीताहरण के संबंध में आपस में चर्चा कर रहे हैं। लड़ाई को एक खेल के बराबर समझ रहे हैं और लंका में हनुमान जी आग लगा देते हैं। इसके बाद रामचन्द्र जी रामेश्वर की स्थापना करते हैं, फिर समुद्र पर पुल बांधते हैं। लंका युद्ध प्रसंग में लक्ष्मण और मेघनाद का युद्ध होता है। लक्ष्मण का बाण मेघनाद को लग जाता है। मरणासन्न स्थिति में वह अपनी पत्नी सुलोचना को सती होने के लिए कहता है। सुलोचना की व्यथा इस गीत में व्यक्त हुई है, ''लक्ष्मण ला लागे है बाण/ मेरा पति ला राम/ रोय रोय सिलोचनाप डेहरी में ठाँड़ें/ मेरा पति कहूँ होई जा सकती। रोय रोय सिलोचना खोरी मा ठाँड़े/ मेरा पति कहू होई जा सती/ लक्ष्मण...../ रोय रोय सिलोचना बिरछा मा ठाँड़े/ मेरा पति कहूँ होई जा सकती/ मेरा पति कहूँ होई जा सकती/ लक्ष्मण.....।''

सुलोचना कह रही है कि मेरे पति मेघनाद को लक्ष्मण का बाण लग गया है। सुलोचना रो-रोकर (डेहरी) घर के द्वार आँगन (खोरी) घर के बाहर के रास्ते (बिरछा) में झाड़ के नीचे खड़ी होकर कहती हैं मेरा पति (कहूँ) कहे सती हो जा।

लंकाविजय कर राम अयोध्या लौट आते हैं। राजकाज संभालते हैं। गोंड़ी लोकगीतों में कहीं भी सीता त्याग का जिक्र नहीं किया गया है। लव-कुश का भी कोई उल्लेख नहीं है। राम के प्रति अपार श्रद्धा ने ही गोंडी लोकगीत में सीता त्याग की घटना की कोई प्रसंग नहीं आया है। सीता तो राजरानी हैं वह सदैव राम के साथ ही रही। राजकाज के बाद राम जब सरयू में समाधि ले लेते हैं तब जनमानस के व्यथित हृदय की करूण पुकार इस गीत में व्यक्त हुई है।

''अब न मिले धनुषधारी रामा/ गंगा में खोजो अर यमुना में खोजो/ अयोध्या में खोजो अर मथुरा में खोजो/ अब न मिले धनुष धारी रामा।'' (बाबूराम मकराम से संकलित)

रामकथा के विविध प्रसंग गोंड़ी लोकगीतों में विद्यमान है। गोंड़ी लोक गायकी में रामकथा में महाभारत के पात्रों का भी समावेश हैं इसका कारण यही हो सकता है, श्रुति परम्परा में रामायण और महाभारत के पात्रों का एक साथ आना। सभ्य समाज से दूर सहजता के आदी गोंडों ने भारतीय संस्कृति के महा जननायकों को पूर्ण श्रद्धा से अपने लोकगीतों में स्थान दिया। गोंड़ो के इन लोकगीतों का संकलन और संरक्षण किया जाना आज की महती आवश्यकता है। विस्तृत शोध एक अभूतपूर्व और विलक्षण कार्य होगा। सुधी अनुसंधित्सुओं से इस दिशा में कार्य अपेक्षित है।

गोंड़ो के ये मौखिक गीत समस्त लोक की अमानत हैं। ये ऐसी धरोहर हैं जिसके सहारे अतीत के मूलरूप से साक्षात्कार कर वर्तमान के अहं को, भले ही क्षणांश के लिए तिरोहित किया जा सकता है।

संदर्भ

गोण्ड जनजातीय गीत -रूपसिंह कुशराम (2003), मध्यप्रदेश आदिवासी लोककला परिषद् भोपाल
श्रीमती बिंदु परस्ते डिंडोरी (हा. मुं, इंदौर) -*विवाह लोकगीत,* बाबूराम मकराम आकाशवाणी इंदौर
छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य -डॉ. बिंदु परस्ते डिंडोरी (हा. मुं, इंदौर)
छत्तीसगढ़ी एवं बुंदेली गीतों में काव्य तत्व -डॉ. दुर्गा पाठक

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) 8,31-34
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 23 सितम्बर 2014

नयी कहानी और कमलेश्वर

डॉ. अनुराग त्रिपाठी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *नयी कहानी और कमलेश्वर* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *अनुराग त्रिपाठी* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

कहानी गद्य की एक सशक्त विधा है। कहानी की अपनी एक दीर्घ परम्परा रही है और यह परम्परा संस्कृत साहित्य से हिन्दी में आती है। हमारे पौराणिक कथानक इस परम्परा के उत्स हैं। लेकिन हिन्दी में कहानी का जो स्वरूप आधुनिक काल में उभरकर आया, वह सर्वथा नवीन रहा। वस्तुतः संस्कृत में जो उपाख्यान मिलते हैं, वे देवी-देवताओं एवं पशु-पक्षियों से सम्बन्धित रहे और प्रायः वे ही उन कहानियों के पात्र भी होते थे। इस दृष्टि से हितोपदेश, पंचतन्त्र, सरित-सागर आदि से सम्बद्ध रचनाओं को देखा जा सकता है। लेकिन आधुनिक काल में हिन्दी कहानी में मानव-जीवन को अहमियत दी गयी और कल्पना के स्थान पर यथार्थ को महत्व मिला। बंग महिला की 'दुलाईवाली' कहानी हो या इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' अथवा किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' हो, सब की सब मानव जीवन को रूपायित करती हैं। यह तो रहा हिन्दी कहानी के शुरूआती दौर का स्वरूप। हिन्दी की पहली कहानी किसे माना जाय, यह प्रश्न आज भी विवाद के घेरे में कैद है। आलोचकों ने अपने-अपने ढंग से इस प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश की है। कोई बंग महिला की 'दुलाईवाली' को हिन्दी की पहली मौलिक कहानी मानता है, तो कोई किशोरी लाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' को हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी का ताज पहनाता है। एक आलोचक ने इन दोनों धारणाओं से हटकर इंशा अल्ला खाँ की कहानी की चर्चा में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' भी आती है। हिन्दी की पहली मौलिक कहानी को लेकर आलोचकों के बीच विवाद के कुहासे को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की ये पंक्तियाँ छाँटती हुई दिखाई देती हैं- ''यदि 'इन्दुमती' किसी बंगला साहित्य की छाया नहीं है, तो हिन्दी की यही पहली मौलिक कहानी ठहरती है, इसके उपरान्त 'ग्यारह वर्ष का समय' फिर 'दुलाईवाली' का नम्बर आता है।''[1] जो भी हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतेन्दु-युग में ही हिन्दी कहानी का आविर्भाव हुआ और उसने अपना एक अलग स्वरूप धारण किया।

भारतेन्दु-युग में यह विधा अपना शैशव काल बिताकर जब प्रेमचन्द-युग में प्रवेश करती है, तो उस समय तक उसे प्रौढ़ रूप मिल चुका होता है। प्रेमचन्द ने हिन्दी कहानी को एक नयी दिशा दी और उसमें समष्टि-सत्य को यथार्थ रूप में निरूपित

* पूर्व शोध छात्र, सा. 17/70 बी-6, बरईपुर, सारनाथ वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

किया। हिन्दी कहानी के विकास के इस प्रथम चरण में प्रसाद का योगदान भी सराहनीय रहा है। उन्होंने भारतीय संस्कृति और इतिहास को एक सफल अभिव्यक्ति दी। प्रेमचन्द-युग के सशक्त कथाकार यशपाल ने हिन्दी कहानी को एक नया मोड़ दिया। उनकी कहानियों में 'मार्क्सवाद' का पुट मिलता है। प्रेमचन्द की ही परम्परा के सशक्त कहानीकार जैनेन्द्र ने अपनी कहानियों में व्यक्तिनिष्ठ जीवनदृष्टि को मनोविज्ञान के धरातल पर निरूपित किया है। इनकी कहानी में प्रेम-चित्रण की एक अलग शैली दिखाई देती है। उनकी कहानियों में निरूपित प्रेम पति-पत्नी के दायरों को तोड़कर एक तीसरे व्यक्ति की तलाश करता दिखाई देता है।

हिन्दी कहानी अपनी विकास-यात्रा के अनेक सोपान पार करती हुई जब पाँचवें दशक में पहुँचती है, तो उसका स्वरूप बदला-बदला दिखाई देता है। सन् 1950 के बाद कविता के क्षेत्र में भी एक नयापन झलकने लगा था। भाव और कला दोनों दृष्टियों से कविता में एक नूतनता का समावेश हो चुका था। हिन्दी कहानी भी अपना केंचुल छोड़कर एक नये स्वरूप में उभर रही थी। वस्तु और शिल्प, दोनों दृष्टियों से सन् 50 की कहानी एक नूतन कलेवर लेकर पाठकों के सामने आती है। यहाँ तक आते-आते उसने आधुनिकता की चुनौती स्वीकार कर ली थी। शहरी और ग्रामीण जीवन को चित्रित करने वाले कथाकार लीक से कुछ हटकर कहानी-सृजन में अपना योगदान दे रहे थे। इस तरह की नूतन प्रवृत्ति देखकर आलोचक हिन्दी कहानी को 'नयी कहानी' के नाम से सम्बोधित करने लगे और 'नयी' शब्द को लेकर हिन्दी कहानी की नये सिरे से व्याख्या की गयी। नयी कहानी के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए इन्द्रनाथ मदान का यह कथन काफी न्याय संगत लगता है- ''आज इसके पुराने बंधन टूट चुके हैं, जीवन के पुराने सत्य गिर चुके हैं। इसलिए आज जीवन में नये सन्दर्भों की खोज है, अभिव्यक्ति के नये माध्यमों की आवश्यकता है।''[2]

वस्तुतः नयी कहानी अचानक चर्चा में नहीं आया। सन् 50 के बाद जब परम्परा से हटकर आधुनिकता से सम्पृक्त नूतन जीवन-मूल्यों को अपने में समेटे हुए यह विधा सामने आयी, तो उसके नूतन स्वरूप को देखकर समीक्षकों ने अपने-अपने ढंग से नयी कहानी को व्याख्यायित किया। नयी कहानी का कहानीकार पारम्परिक मूल्यों को छोड़कर मानव के यथार्थ जीवन का चित्रण करने में विश्वास रखता है। इस सम्बन्ध में राजेन्द्र यादव का यह कथन तर्कपूर्ण लगता है- ''शायद यही कारण है कि हमारे इस कथा-काल की सारी कहानियाँ नये सम्बन्धों के बनने की कहानियाँ नहीं, सम्बन्धों के टूटने की कहानियाँ हैं, सारे सम्बन्धों से टूटा हुआ व्यक्ति अधिक से अधिक अकेला, अजनबी होता चला जाता है, पिछली पीढ़ी के प्रति अविश्वास, घृणा और आपस में अपरिचय, अनिश्चय..... यही यथार्थ नयी कहानी के माध्यम से बार-बार सामने आता है।''[3]

वस्तुतः सन् 1956 के बाद कहानी में जो नयापन परिलक्षित होता है, उसके मूल में तत्कालीन कहानीकारों में नूतनता के प्रति एक आग्रह भी रहा है। उस समय के कहानीकारों ने यह स्वीकार किया कि कहानी को पुरानेपन से निकालकर उसे नूतन कलेवर दिया जाय। इस सम्बन्ध में नामवर सिंह का यह कथन ध्यातव्य है- ''इस प्रकार की आत्म-स्वीकृतियाँ नये-पुराने के लम्बे संघर्ष के बाद ही सामने आती हैं और कहना न होगा कि हिन्दी कहानी में वह समय इस संघर्ष की शुरुआत का था।''[4]

यहाँ एक बात और स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि नयी कहानी अपने पूर्व की कहानी से पूर्ण रूप से भिन्न नहीं है। किसी न किसी रूप में वह उससे जुड़ी हुई है, क्योंकि उस समय पुरानी पीढ़ी के कथाकार भी जिस तरह की कहानी लिख रहे थे, वह नयी कहानी से किसी भी मायने में कम नहीं थी। 'रामबक्ष' की यह दृष्टि नयी और पुरानी कहानियों के बीच सेतु का काम करती है- ''इन कहानियों में नये और पुराने का संघर्ष है ही नहीं (क्योंकि जीवन में नहीं था) एक अजीब-सी स्थिति है कि दोनों पीढ़ियाँ घर में एक साथ मिलती ही नहीं। दोपहर का भोजन भी एक के बाद एक चुपके से कर जाते हैं।''[5]

नयी कहानी के रचनाकार अतीत को लेकर रोने-धोने से मुक्त हैं। उनके सामने उनका अपना एक वर्तमान है, जो संघर्ष और चुनौतियों से जुड़ा हुआ है। इसलिए इस दौर में कुछ ऐसी कहानियाँ आयीं, जो वर्तमान को बड़ी ईमानदारी से प्रस्तुत करती दिखायी देती हैं- 'कर्मनाशा की हार', 'गुलकी बन्नो', 'गुलरा के बाबा' आदि रचनाएँ इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि नयी कहानी नये और पुराने झगड़े में न पड़कर एक नूतन दृष्टि लेकर हमारे सामने आती है और समाज का यथार्थ पाठकों के सामने पेश करती है। उसमें नूतनता के प्रति दुराग्रह कतई नहीं दिखाई देता। वह जीवन की जटिलताओं, सामाजिक विसंगतियों, कुण्ठाग्रस्त अवसाद, पति-पत्नी के बीच तनाव आदि को सहज रूप में निरूपित करती दिखाई

देती है। आलोचकों की पैनी दृष्टि ने इस दौर की कहानी को पूर्व की कहानियों से कुछ हटकर देखा होगा, तभी उन्हें इसे नयी कहानी की संज्ञा देनी पड़ी।

नयी कहानी के पुरोधा कमलेश्वर हिन्दी कहानी को एक ऐसे मोड़ पर लाकर खड़ा कर देते हैं, जहाँ हिन्दी कहानी अपने प्राचीन कलेवर को छोड़कर एक नये शिल्प में ढलती दिखाई देती है। वस्तुतः उनकी कहानियों का कथ्य ही ऐसा है, जो पूर्ववर्ती कहानियों के ढर्रे से कुछ हटकर दिखाई देता है। लीक से हटकर नूतन मार्ग अपनाना उनकी कहानियों की प्रकृति है। परम्परागत मूल्यों के प्रति उदासीनता एवं नूतनता के प्रति आग्रह उनके पहले दौर की कहानियों में देखा जा सकता है। 'राजा निरबंसिया', 'कस्बे का आदमी', 'गर्मियों के दिन', 'नीली झील' आदि कहानियों की बुनावट एक नयापन लिये हुए है। एक जगह उन्होंने परम्परागत मूल्यों के प्रति अपनी असहमति प्रकट भी की है- ''जीवन और उसके परम्परागत मूल्यों के प्रति उन पात्रों की असहमति ही मेरी असहमति है।''[6]

सच तो यह है कि उनके इस दौर की कहानियों में नयी कहानी के सारे लक्षण दिखाई देते हैं। इनमें जहाँ शिल्पगत नूतनता है, वहीं कथ्यगत विशिष्टता भी है। आदर्शों के प्रति अनावश्यक लगाव इन कहानियों में कतई नहीं दिखाई देता। उनके पात्र वही करते हैं, जो परिस्थितियाँ उनसे करवाती हैं। पात्र और परिस्थितियों के संघर्ष में उनके पात्र प्रायः पराभूत दिखाई देते हैं। नयी कहानी दो दिशाओं में आगे बढ़ती है। पहली दिशा में जाने वाली कहानियाँ ग्रामीण जीवन को बड़ी सहजता एवं ईमानदारी के साथ चित्रित करती हैं और दूसरी दिशा में जाने वाली कहानियाँ नगरीय जीवन को रूपायित करती हैं। लेकिन कमलेश्वर की कहानियों में कस्बाई जीवन को सर्वाधिक महत्व मिला। 'कस्बे का आदमी' कहानी में कस्बाई संस्कृति और संस्कार उभरकर सामने आये हैं। 'गर्मियों के दिन' कहानी में कमलेश्वर अपने युग के जीवन मूल्यों की तलाश करते दिखाई देते हैं और इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आज के जीवन में जीवन-मूल्य विखण्डित हो चुके हैं। निरर्थक खोखलेपन एवं झूठी शान को लेकर व्यक्ति कृत्रिम जीवन जी रहा है।

कस्बाई जीवन को चित्रित करने वाले कहानीकार कमलेश्वर सन् 1960 तक आते-आते महानगर के जीवन को नजदीक से देखते हैं और पाते हैं कि यहाँ तो अपनापन खो सा गया है। संवेदनशून्यता, कृत्रिम जीवन शैली, अजनबीपन आदि महानगरीय जीवन के अंग-से बन गये हैं। 'दिल्ली में एक मौत' कहानी पूर्ण रूप से संवेदनशून्यता की कहानी है। सेठ दीवान चन्द्र की मृत्यु पर पड़ोसियों को दुःखी होने को कौन कहे, उन्हें इस बात की चिन्ता अधिक सता रही है कि कहीं इस कड़ी सर्दी में शव-यात्रा में शरीक न होना पड़े और जब लोगों को शरीक होना पड़ा, तो वहाँ लोगों में प्रसंग से हटकर बातें होती हैं। लेखक महसूस करता है कि यह संवेदन-शून्यता गाँव और कस्बों में कतई नहीं दिखाई देती। 'खोई हुई दिशाएँ' कहानी में हर व्यक्ति एक-दूसरे को अजनबी दिखाई देता है। अपनापन खोजने पर नहीं मिलता। कहानी का पात्र 'चन्दर' इस पीड़ा को महसूस करता है। कस्बे से दिल्ली आने पर वह धीरे-धीरे इतना अकेला हो जाता है कि वह अपनी पहचान भी खोने लगता है। शहर के कृत्रिम जीवन में अपनत्व की तलाश धीरे-धीरे मृतप्राय हो जाती है। सच तो यह है कि महानगरों में हर व्यक्ति अकेलापन महसूस कर रहा है। 'तलाश' कहानी में बदलते जीवन-मूल्यों की ओर लेखक का संकेत है। विधवा माँ को अपनी युवा लड़की की चिन्ता कम, अपने सुख की चिन्ता अधिक है। बेटी अपनी माँ के अन्दर वात्सल्य को तलाश करती दिखाई देती है। वह अपनी माँ के विषय में कहती भी है- ''उनके तन से ऐसी अछूती गन्ध उड़ती थी, जो सबको अपनी तरफ खींचती थी।''[7] एक तरफ मातृत्व है, जो दूसरी तरफ नारी। दोनों के बीच निरन्तर संघर्ष होता रहता है और अन्ततः नारी जीत जाती है और विधवा माँ आधुनिक परिवेश में अपने को ढाल लेती है और आत्मसुख के लिए मातृत्व को परे कर देती है। महानगरों में जीवन-मूल्य, नैतिकता, पारस्परिक सम्बन्ध, सब के सब बिखरते-से दिखाई दे रहे हैं। जहाँ मूल्य है ही नहीं, वहाँ मूल्यों की तलाश करना बेमानी है। वस्तुतः आज के युग में मूल्य अपनी पहचान खो चुके हैं। सम्बन्ध अपनत्व के मोहताज हो गये हैं। हर व्यक्ति आत्मसुख में लीन है। समाज-हित उसके लिए बहुत मायने नहीं रखता।

कमलेश्वर के तीसरे दौर की कहानियों में महानगरीय बोध और अधिक खुलकर सामने आता है। उनकी इस दौर की कहानियों में व्यक्ति का संघर्ष उभरकर सामने आता है। हर व्यक्ति अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष करता दिखाई देता है। आस्था, विश्वास, प्रेम, अपनापन, पारिवारिक सम्बन्ध आदि भौतिकता के तराजू में तोले जाने लगे। सांस्कृतिक संकट और संवेदन-शून्यता मानवीय मूल्यों को आहत करते दिखाई देते हैं। 'नागमणि' कहानी देश में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं बेईमानी पर तीखा

प्रहार करती है। इस दौर की उनकी 'बयान' कहानी समाज की जटिलताओं और विसंगतियों को बड़े यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती हैं। 'असक्ति' कहानी युवा पीढ़ी की असहाय स्थिति को रेखांकित करती है। वस्तुतः यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते कमलेश्वर की कहानियों में सामान्य आदमी की विवशता, उसकी असहाय स्थिति, उसका मोहभंग, क्रूर व्यवस्था में उसका पिसता आत्मविश्वास सबके सब अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते दिखाई देते हैं। अपने इस दौर की कहानियों के विषय में कमलेश्वर जी स्वयं अपना बयान देते हैं- ''यातनाओं के जंगल से गुजरते मनुष्य की इस महायात्रा का जो सहयात्री है, वही आज का लेखक है। सह और समान्तर जीने वाला आदमी के साथ।''[8]

समग्रतः कह सकते हैं कि कमलेश्वर का कहानी-लेखन नयी कहानी-आन्दोलन को सम्बलित कर उसे जीवन्तता प्रदान करता है। आधुनिकता-बोध उनकी कहानियों का उत्स है। नयी कहानी को एक स्वस्थ्य स्वरूप प्रदान करने में कमलेश्वर का उल्लेखनीय योगदान रहा है। उनकी कथा-यात्रा अपने हर मोड़ पर समाज के यथार्थ को प्रस्तुत करती है। नयी कहानी के पुरोधा कमलेश्वर भारतीय समाज के यथार्थ द्रष्टा हैं। समाज के कटु यथार्थ का चित्रण करते हुए भी वे अप्रत्यक्ष रूप से मानव-मूल्यों के पोषक हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि कमलेश्वर की कहानियों में आदर्शों को कही नहीं थोपा गया है। वे समाज के यथार्थ को पाठकों के सामने रख देते हैं और अप्रत्यक्ष रूप से संकेत करते हैं कि इस यथार्थ को नजर अंदाज करके समाज को स्वस्थ रूप नहीं दिया जा सकता। संघर्ष से पलायन करके व्यक्ति अपने अस्तित्व की रक्षा कदापि नहीं कर सकता। उनकी कहानियों का व्यक्ति-सत्य समाज का सत्य है। कमलेश्वर यथार्थ और संघर्ष के कहानीकार हैं। उनकी कहानियाँ यथार्थ के ठोस धरातल पर खड़ी दिखाई देती हैं। कल्पना के पंख लगाकर उड़ान भरना उनकी रचनाधर्मिता के प्रतिकूल है। उनकी कहानियों का सही मूल्यांकन करते हुए डॉ. बच्चन सिंह का यह कथन ध्यातव्य है- ''कमलेश्वर इस कालखण्ड के अत्यन्त सशक्त कहानीकार हैं। यह शक्ति रूमानियत से अलग होने और भाषा-संरचना के संयम में निहित है। सम्पूर्ण संरचना में इतनी निःसगता किसी अन्य कहानीकार में नहीं आ पायी है।''[9]

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

[1]हिन्दी साहित्य का इतिहास -आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या 344, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
[2]हिन्दी कहानी : पहचान और परख -डॉ. इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ संख्या 24
[3]एक दुनिया : समानान्तर -राजेन्द्र यादव, पृष्ठ संख्या 31
[4]हिन्दी कहानी : पहचान और परख -डॉ. इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ संख्या 135
[5]आधुनिक हिन्दी कहानी : गंगा प्रसाद विमल, पृष्ठ संख्या 130
[6]मेरी प्रिय कहानियाँ : कमलेश्वर (भूमिका), पृष्ठ संख्या 6, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-6
[7]वही, पृष्ठ संख्या 140
[8]वही, पृष्ठ संख्या 6
[9]हिन्दी साहित्य का इतिहास -डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ संख्या 692

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) 8,39-42
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 06 सितम्बर 2014

डॉ. सूर्यनारायण द्विवेदी के उपन्यासों में पौराणिकता

सरोज बाला*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *डॉ. सूर्यनारायण द्विवेदी के उपन्यासों में पौराणिकता* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *सरोज बाला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

'पुराण का शाब्दिक अर्थ पुरातन, प्राचीन, प्राचीनकाल की कोई घटना, अतीतकाल की कथा, धार्मिक अख्यान होता है।'[1] डॉ0 सूर्यनारायण जी के उपन्यासों का आधार पौराणिक है। पात्र वैदिककालिन भी ठीक वैसा ही है। अलौकिक घटनाओं का वर्णन है। ऋषि-मुनी, आश्रम, देवी-देवताओं से सम्बधित घटना क्रम है। उनके पौराणिक चरित्र आज के युग में भी अनुकरणीय है।

'आत्रेयी अपाला' उपन्यास की अपाला 'आशाशिशु' का अंशुल, उपयमा आदि इस दिशा में वैदिक भाव में उदाहरणीय चरित्र है।

'आशाशिशु' में देवर्षि नारद भारतवर्ष के पौराणिक काल का प्रख्यात चरित्र है। कहीं-कहीं इन्हें भगवद् अवतारों में भी गिना जाता है। इनका चरित्र प्रायः एक मनोरंजक पात्र के रुप में लोक के सामने आया है। इनका महत्वपूर्ण योगदान भक्तों के लिए स्वीकार किया गया है। एक सम्पूर्ण पुराण ही नारदपुराण, उनके महत्व पर रचा गया है। इस उपन्यास का आधार भी 'नारदपुराण' एवं 'श्रीमद्भागवत् गीता' रहे है। देवर्षि नारद के उन्हीं के अनुसार तीन जन्म हुए। पहले जन्म में वे अपवर्हण नाम के गन्धर्व थे। तीसरे जन्म में वे साक्षात् ब्रह्म के पुत्र हुए। यह उपन्यास उनके द्वितीय जन्म पर आधारित है। इस उपन्यास में श्रीमद्भागवत् गीता से कई श्लोक लिए गए हैं। लेखक ने कहानी आरम्भ करने से पूर्ण तथा कथा शुरु होने से पहले व बाद में संस्कृत के श्लोक दिए हैं।

कहीं-कहीं कथा के बीचमें भी वेदमंत्रों को दिया गया है। जैसे जब उपयमा शिशु को जन्म देने के बाद सर्वप्रथम भगवान सूर्य के दर्शन करवाती है तो उपयमा की इस क्रिया से वातावरण में एक ऋचा गूंज उठी- ''ॐ पवित्रेस्थोवैष्णव्यौसवितुर्व्व÷प्रसव ऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेणपवित्रेणसूर्यस्यरश्मिभि÷ ।। तस्यतेपवित्रपतेपवित्रपूतस्य यत्कामः पुनेतच्छकेयम्।।1।।''[2]

* गवर्नमेंट सीनियर सेकेंड्री स्कूल [आर्य नगर] हिसार (हरियाणा) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

इस दिव्यवाणी का अर्थ तो उपयमा नहीं समझी परन्तु उसकी दिव्यता ने अन्तर मन को छू लिया और जब सप्तऋर्षि गण वनप्रान्त में यज्ञ करते हैं। वहाँ अंशुल को महर्षि पुलस्त्य दिव्य ज्ञान प्रदान करते हैं।

'यज्ञशाला में आवेश करते ही उनकी आँखें प्रसन्नता से चमक उठी जब उन्होंने अग्निकुण्ड के ठीक सामने वाली पूर्व वेदिका पर अंशुल को पद्मासन में बैठा हुआ पाया। कुण्ड से उठती हुई अग्नि की ज्वाला का शुभ्र आकाश उसके मुखमण्डल को आलोकित कर रहा था। कौपीन उसकी कमर में पड़ी थी, शेष सारा शरीर निरावृत था। ऋषियों ने पहुँचकर अग्नि कुण्ड को चारों ओर से घेर लिया। अंशुल की आँखें बन्द थीं लेकिन मुख से बहुत ही धीमें स्वरों में कुछ स्फुट शब्दों में कहा जा रहा था। ऋषियों ने सावधान होकर सुनना ही उपयुक्त समझा- 'संकीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मजित् भक्तिः आवृतात्मरजस्त-मोपहा'[3]

डा. सूर्यनारायण द्विवेदी ने आशाशिशु उपन्यास में सप्तऋषियों का वर्णन किया है। स्वर्ग की देवाङ्गनाओं का वर्णन हुआ है। इस उपन्यास में बीच-बीच में अनेक अलौकिक घटनाओं को जोड़ दिया है। वर्तमान काल में ऐसी घटनाओं पर विश्वास करना मुश्किल है क्योंकि आज का युग एक वैज्ञानिक युग है चूंकि यह उपन्यास एक पौराणिक आधार लेकर रचा गया है। इसकी कथा में कभी एक सफेद रंग का सर्प अंशुल के मुख पर छाया करता है बाद में वह गायब हो जाता है। कभी स्वर्ग में अप्सरायें अंशुल से मिलने आती हैं। उनके पहले जन्म की ओमिका तिलोत्तमा नामक कन्या स्वर्ग से आती है। बाद में सब गायब हो जाती है। उपयमा का पति उसे छोड़कर चला जाता है और कुछ ऋषियों के आशीर्वाद से वह गर्भवती हो जाती है। अंशुल की भक्ति से प्रसन्न होकर स्वर्ग के देवता भी उसके दर्शन करने पृथ्वी पर आते हैं। यह सब अलौकिक घटनाएं हैं। जो हमारे वेद, पुराण, महाभारत एवं रामायण आदि ग्रन्थों से ही मिलती है। इसी तरह अंशुल को जंगल में एक पवित्र स्थान पर 'शिव' के दर्शन होते हैं। लेखक ने वनवासियों के जीवन, रहन-सहन, खान-पान, वस्त्राभूषण, घर-वातावरण आदि का बड़ा सुंदर वर्णन किया है। प्राचीनकाल के वन में रहने वाले लोगों के रीति-रिवाज, उत्सव, सहयोग की भावना आदि का चित्रण किया है।

'उपयमाकी जीवन यात्रा जंगली फलों, नीवार के धान्य कणों, कन्दमूलों जैसी चीजों पर ही निर्भर था। उसके सोने के लिए कुश की शय्या थी तथा अपने छोटे बेटे को वह पेड़ों के कोमल किसलय तोड़कर उनकी शय्या बनाकर सुलाती थी।'[4]

लेखक ने जंगली जीवों का, वनवासियों की पूरी संस्कृति का भाव-विहल कर देने वाला वर्णन किया है। जो पढ़ते ही पाठक की आँखों के सामने हूबहू आ जाता है।

द्विवेदी जी का उपन्यास 'आत्रेयी अपाला' में अभिशप्त अपाला की वैदिक काल की पौराणिक कथा है। इसका उल्लेख वृहद देवता और नीतिमंजरी में स्पष्टतया मिलता है इसके सिवा शाकटायन की संहिता एवं सायाण भाष्य में थोड़े परिवर्तन के साथ मिलता है। आचार्य पं. बलदेव उपाध्याय ने अपनी ''भारतीय वाङ्मय में राधा'' में भी इसे पल्लवित किया है।

अभिशप्त अपाला एक ब्रह्मवादिनी वैदिक ऋषि है। महर्षि अत्रि और महासती अनुसूया की औरस संतान। कुष्ठ के कारण उसका रुप अशोभनीय हो जाता है। औषधि व्यापाश्रयी चिकित्सा काम नहीं करती। ऐसे क्षणों में देवव्यापाश्रयी चिकित्सा उसके रुप में अनुपम परिवर्तन कर देती है, जिससे खिंचे हुए कृशाश्व परित्यक्ता को भी अपनाने में अपना सौभाग्य समझते हैं।

अभिशप्त अपाला वैदिक साहित्य का विश्रुत चरित्र है। पात्र वैदिककालीन है और वातावरण भी ठीक वैसा ही है। 'आत्रेयी अपाला' उपन्यास की कथा के आरंभ में ही ब्रह्म द्वारा चार कुमार, कामदेव, उर्ध्वरेता, सप्तऋषियों व महर्षि को उत्पन्न करने का जिक्र है। ब्रह्म ने अपनी छाया से कर्दन ऋषि की उत्पति की। पृथ्वीलोक के प्रथम सम्राट मनु और शतरुपा की कन्या देवहूती का विवाह कर्दन ऋषि से हुआ। देवहूती ने नौ महानुभावों को जन्म दिया जिसमें अनुसूया भी एक थी। ब्रह्म की सहमति से अनुसूया और महर्षि अत्रि का विवाह हुआ। 'आत्रेयी अपाला' उपन्यास की आमुख पात्र अपाला इसी देवी अनुसूया व महर्षि अत्रि की सन्तान है।

महर्षि अत्रि व देवि अनुसूया पौराणिक चरित्र है। अनेकों ग्रन्थों व पुराणों में उनका वर्णन है। महर्षि अत्रि अपने पिता ब्रह्मा की तरह ही ज्ञान, वैराग्य विभूति, धर्म, ऐश्वर्य और यश से सम्पन्न है फिर भी अपने जीवन के लक्ष्य परमात्मा की उपासना को मानने के कारण उनमें अभिमान छू तक नहीं गया है। सभी गुणों से युक्त देवि अनुसूया महर्षि के आश्रम में स्वंय को सेवा-भावना में समर्पित कर देती है।

वैदिक काल में ऋषि मुनियों, की तपस्या, यज्ञ कर्म विद्याग्रहण, समाधि, तथ आध्यात्मिक साधना होती थी, ठीक वैसी ही इस कथा में वर्णन है।

डा0 सूर्यनारायण द्विवेदी ने वैदिक कालीन वातावरण का ज्यो का त्यों वर्णन इस कथा में किया जाता है। महर्षि अत्रि के आश्रम में पवित्र, सुगन्धित हवा बहती है। मन्त्रोच्चारण की ध्वनि गुँजती रहती है। सभी वनस्पतियां, पशु-पक्षी जगत में स्वाभाविक प्रेम है। लेखक लिखता है- 'स्वयं होने जंगल के वृक्षों और पृथ्वी के नीचे से मिलने वाले फलों और पृथ्वी के ऊपर अपनी इच्छा से उग आने वाली नीवारों से मिलने वाली धान्यराशि ही जिसका आधार है। गायें जिन्हें ये तपस्वी अपने साथ रखते हैं। दिन भर जंगलों में घूमकर अपने लिए भोजन इकट्ठा कर लेती हैं और जो कुछ थोड़ा बहुत दूध दे देती हैं, उससे निकले हुए घृत से इन ऋषियों की यज्ञ-क्रियायें चलती हैं। किसी की वृत्ति का हनन न करते हुए अपनी जीविका चलाने के कारण यहाँ के रहने वाले तपस्वियों का स्वभाव शान्त, शुद्ध और स्नेहिल है। इसका प्रभाव यहाँ के जंगलों में रहने वाले हिंसक पशुओं पर भी इतना पर्याप्त पड़ता है कि वे भी आहार लिए इस स्थान के प्राणियों की हिंसा नहीं करते। ऐसे ही आश्रम में महर्षि अत्रि का भी एक आश्रम है।''[5]

पौराणिक कथानकों में पात्र कल्पना पर डॉ0 विश्वबन्धु लिखते हैं- ''पौराणिक काव्यों में पात्र-कल्पना के लिए कवि को पूरी छूट रहती है। वह स्वेच्छा से अपनी मान्यता के अनुरुप पात्रों के क्रिया-कलापों का वर्णन कर सकता है और उन्हें अपनी कल्पना के अनुसार रुप दे सकता है।.....रावण, मेघनाद, कर्ण आदि पौराणिकपात्रों को नायक बनाकर कुछ काव्य लिखे गये और उनमें से लोक विश्रुत चरित्र को नया रुप देकर प्रस्तुत किया गया।''[6]

द्विवेदी जी के उपन्यास 'आत्रेयी अपाला' में अपाला एक लोक विश्रुत चरित्र है। लेखक ने औपन्यासिक आलेख में लेखकीय स्वातंत्र्य का उपयोग कहीं-कहीं किया है। फिर भी लेखक का प्रयत्न रहा है, कहानी की तथ्यतः स्वरुप रक्षा हो। पात्र वैदिक कालीन है। वातावरण भी वैदिक कालीन है। चमत्कारिक घटनाओं का वर्णन यत्र-तत्र हुआ है। अपाला को चर्मरोग है जिसकी वजह से उसका विवाहिक जीवन संकट में पड़ जाता है। अपने माता व पिता की आज्ञा से अपाला देवव्यापश्रयी चिकित्सा करती है। इसके लिए उसे व्रत, यज्ञ, तप, साधना करनी पड़ती है। वह दृढसंकल्प लेकर पंचभूतों (जल, पृथ्वी, आकाश, अग्नि, हवा) की तपस्या में लीन हो जाती है। जब उसकी यज्ञाविधि पूर्ण होने लगती है तो अपाला को लगा की कोई उसके समीप आ रहा है और एकाएक चमत्कारिक घटना घटती है। लेखक लिखता है- 'अपाला एक दिन जब हवन कर्म से उठी ही थी कि मध्याह्नकाल में कुछ क्षणों के लिए उसे लगा मानों सूर्यदेव ने स्वयं आकर बहुत धीर कण्ठ से अपाला को समझाया- ''बेटी! तुम्हारी क्रियाएं पूरी हो चली हैं, तुम्हारी साधना का अन्तिम छोर समीप है, किन्तु तुम्हें अपने देवता को आसक्त करने के लिए सोमरस का प्रबंध करना पड़ेगा। सोमरस एक ऐसी औषधि है, जिससे देवता अत्यन्त मत्त होकर साधक की इच्छा तत्काल पूरी करने के लिए उद्यत हो जाते हैं।'' अपाला जब तक कुछ कहना चाहती, तब तक तेज का अन्तर्ध्यान हो गया था।'[7]

पौराणिक कथाओं, वेदग्रन्थों में ही ऐसी घटनाओं का वर्णन मिलता है। वर्तमानकाल में ऐसी घटनाओं पर विश्वास करना मुश्किल है क्योंकि आज विज्ञान ने इतनी तरक्की कर ली है। यह उपन्यास पौराणिक आधार लेकर लिखा गया है। लेखक ने उपन्यास में वन्य जीवन की संस्कृति का वर्णन किया है। अपाला का बचपन, शिक्षा-दीक्षा, आश्रम के नियम, ऋषिपुत्रों का यज्ञ-हवन, ऋषिकन्याओं की कार्य कुशलता, अपाला का विवाह संस्कार आदि क्रियाओं में वन्य जीवन की संस्कृति का बड़ा सुंदर वर्णन हुआ है।

'अतिथि देवो भवः' हमारी संस्कृति का अंग है। इसका सुंदर वर्णन इस उपन्यास में मिलता है। पौराणिक उपन्यास लेखन में लेखक का उद्देश्य कोई न कोई आदर्श प्रस्तुत करने का होता है। इस पर डॉ0 शान्तिस्वरुप गुप्त लिखते हैं- 'पौराणिक उपन्यास में कोई आदर्श प्रस्तुत करने या उपदेश देने के लिए ही पौराणिक पात्रों- कर्ण, एकलव्य, परशुराम आदि पुरुषों तथा सावित्री, मदालसा, अनुसूया आदि स्त्रियों के चरित्र प्रस्तुत नहीं करता, अपितु अपने प्रौढ़ चिन्तन के आधार पर पौराणिक कथाओं और प्रसंगों को आधुनिक संदर्भ आदान करता है, पात्रों को नए रुप में प्रस्तुत करता है, उनके कार्यों के पीछे जो मनोवैज्ञानिक कारण हो सकते हैं उनकी खोज कर उनको सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करता है। अलौकिक पात्रों को मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित करने, कथा की युगानुरुप व्याख्या करने, जीवन की किसी मूलवृति का विवेचन कर, उस पर प्रकाश डालने के लिए भी पौराणिक उपन्यास लिखे जाते हैं।'[8]

द्विवेदी जी के उपन्यास पौराणिक धरातल पर लिखे गए हैं। परंतु लेखक ने अपने प्रौढ़ चिन्तन के आधार पर पौराणिक कथा और प्रसंगो को आधुनिक संदर्भ प्रदान किये हैं। 'आशाशिशु' उपन्यास में लेखक ने देवर्षि नारद के विषय में लोकरंजन कथाएं उनका रुप प्रस्तुत नहीं करती हैं उनके वास्तविक जीवन पर प्रकाश डालना व लोक के सामने लाना ही लेखक का आमुख ध्येय रहा है।

'आत्रेयी अपाला' उपन्यास में लेखक ने अभिशप्त अपाला के जीवन का वैदिककालीन कारुणिक व मार्मिक वर्णन किया है। आज के युग में जब पति परित्यक्ता स्त्रियों की संख्या बढ़ रही है। अपाला के जीवन की कथा प्रेरणादायक एवं विशेष महत्व की है। स्त्री पुरुष के अन्तः संबंध उनकी मानसिकता, ओम, भावनात्मक एकता पर अपाला के जीवन से एक सामान्य सा ही सही प्रकाश पड़ता है। किस प्रकार कुष्ठ के कारण अपाला का जीवन अभिशप्त हो जाता है और किस आकार अपने दृढ़-संकल्प के द्वारा वह अपने खोए हुए दाम्पत्य को पुनः प्राप्त करती है, यही प्रसंग अभिशप्त अपाला की कहानी से सीधा जुड़ता है। आज के युग में परित्यक्ताओं के लिए सत्संकल्प के अनुरुप अभिशप्त अपाला चरित्र अनुकरणीय है।

अतः डॉ0 सूर्यनारायण द्विवेदी के उपन्यासों में पौराणिक कथाओं के माध्यम से अलौकिक पात्रों को मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित करके जीवन की मूलवृतियों का विवेचन कर, उस पर प्रकाश डालने का एक प्रयास है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

डॉ0 सूर्यनारायण द्विवेदी -*'आशाशिशु',* श्री श्री राधा प्रकाशन 29, ब्रह्मनंद कालोनी, वाराणसी 5, प्रथम संस्करण 1999

डॉ0 सूर्यनारायण द्विवेदी -*आत्रेयी अपाला,* श्री श्री राधा प्रकाशन 29, ब्रह्मनंद कालोनी, वाराणसी 5, प्रथम संस्करण 1999

डॉ0 विश्वबन्धु शर्मा -*साठोत्तरी हिन्दी महाकाव्यों में पात्र-कल्पना,* मंथन पब्लिकेशन्स रोहतक

डॉ0 शान्तिस्वरुप गुप्त -*उपन्यास स्वरुप, संरचना तथा शिल्प,* अलंकार प्रकाशन, 666 झील, दिल्ली 59

कोश ग्रन्थ-आदिकालीन हिन्दी शब्दकोश -भोलानाथ तिवारी, रिसाल सिंह आभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली, आथम संस्करण, 1988

Footnotes

[1]साठोत्तरी हिन्दी महाकाव्यों में पात्र-कल्पना- डॉ0 विश्वबन्धु शर्मा, पृष्ठ संख्या 3

[2]डॉ0 सूर्यनारायण द्विवेदी -आशाशिशु, पृष्ठ संख्या 7

[3]वही, पृष्ठ संख्या 43

[4]डॉ0 सूर्यनारायण द्विवेदी -आशाशिशु, पृष्ठ संख्या 4

[5]डॉ0 सूर्यनारायण द्विवेदी -आत्रेयी अपाला, पृष्ठ संख्या 2

[6]डॉ0 विश्वबन्धु शर्मा- साठोतरी हिन्दी महाकाव्यों में पात्र-कल्पना, पृष्ठ संख्या 8, 9

[7]डॉ0 सूर्यनारायण द्विवेदी -आत्रेयी अपाला, पृष्ठ संख्या 102

[8]उपन्यास स्वरुप, संरचना तथा शिल्प -डॉ0 शान्तिस्वरुप गुप्त, पृष्ठ संख्या 32

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) 8,47-49
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 सितम्बर 2014

ऊर्जा के नये स्त्रोत परमाणविक नहीं, प्राकृतिक होंगे

डॉ. अंजली श्रीवास्तव*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *ऊर्जा के नये स्त्रोत परमाणविक नहीं, प्राकृतिक होंगे* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अंजली श्रीवास्तव* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

प्रकृति हमारा पोषण करने में समर्थ है, परन्तु हमारी सुरसा रूपी महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिये नहीं। पारम्परिक ऊर्जा की बेशुमार खपत के कारण इसके स्त्रोत समाप्तप्राय हो चुके हैं, अतः इसके विकल्प के रूप में वैकल्पिक ऊर्जा की खोज की जा रही है। धरती के पंचतत्वों में वह सब कुछ विद्यमान है जिसकी हमें आवश्यकता है। धरती पर सूर्य का प्रकाश बिखरा हुआ है, प्रकृति में हवा है, पानी है, अनेक ज्वालामुखी है, समुद्र में ऊँची लहरें उठती हैं। ये सब ऊर्जा के भण्डार हैं, हमारा विज्ञान अब इनसे ऊर्जा उत्पादन की विधि खोजने में प्रयासरत है।

वर्तमान में परिवर्तित वैश्विक परिस्थिति एवं जीवनशैली ने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं में ऊर्जा को भी जोड़ दिया है। ऊर्जा इस विश्व के विकास का प्रमुख तत्व है। अतः इसके लिये सभी एक स्वर से वैकल्पिक ऊर्जा की अवधारणा की बात कर रहे हैं।

गैर-पारम्परिक ऊर्जा स्त्रोतों में सौर ऊर्जा प्रमुख है। एक विशेषज्ञ के अनुसार विश्व को जितनी मात्रा में सूर्य का प्रकाश उपलब्ध है, यदि उसका प्रयोग बिजली उत्पादन में किया जाये तो वर्तमान में जितनी बिजली की खपत विश्व में है उससे बीस हजार गुना ज्यादा बिजली बनाई जा सकती है। इण्टरनेशनल एनर्जी कमीशन के अनुसार विश्व में सूर्य ऊर्जा संग्रहित करने वाले सभी प्रकार के लगभग 1800 लाख वर्गमीटर क्षेत्र उपलब्ध है। इनमें 340 लाख सोलर सिस्टम में प्रतिवर्ष 126000 मेगावाट ऊष्मा उत्पन्न की जा सकती है। यह ऊर्जा उतनी है, जितनी कि 750 लाख बैरल तेल से उत्पन्न होती है।

सौर ऊर्जा से अनगिनत लाभ हैं। कभी समाप्त न होने वाले इस अशेष ऊर्जा भण्डार के द्वारा प्रतिवर्ष 350 लाख टन कार्बन डाई ऑक्साइड (CO_2) के उत्सर्जन को रोका जा सकता है। इस प्रकार वातावरण को प्रदूषणमुक्त करने में

* सहायक प्राध्यापिका, अर्थशास्त्र विभाग, शासकीय महाराजा महाविद्यालय [सागर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध] छतरपुर (मध्य प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

इसका महत्वपूर्ण योगदान है। ब्रिटेन में वर्ष 2011 के अंत तक 230000 सौर ऊर्जा प्रोजेक्ट थे, जिनकी उत्पादन क्षमता 750 मेगावाट थी। इस संदर्भ में जर्मनी, ब्रिटेन से काफी आगे है। जर्मनी अपनी कुल बिजली की मांग की 50 प्रतिशत पूर्ति सौर ऊर्जा से करता है। जर्मनी में फोटोवोल्टिक सेल्स के प्रयोग में भारी वृद्धि हुई है। फोटोवोल्टिक सेल्स के द्वारा सूर्य का प्रकाश बिजली में परिवर्तित होता है। अमेरिका में प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा वर्ष 2013 में कुल 7270 मेगावाट है, जिसमें सौर ऊर्जा का भाग 2936 मेगावाट (21 प्रतिशत) है जो 266 सोलर प्रोजेक्ट से प्राप्त होती है। कैलिफोर्निया में सौर ऊर्जा की क्षमता सर्वाधिक है। सौर ऊर्जा के उत्पादन में चीन, ब्रिटेन व जर्मनी से आगे हैं। वहाँ पर 930 लाख वर्गमीटर में फैले 227 लाख सौर पैनल हैं, इनसे 6369175000 लीटर तेल एवं 174 लाख टन कार्बन डाई ऑक्साइड (CO_2) का क्षरण रूकता है।

सौर ऊर्जा का उपयोग रसोई गैस के रूप में, सोलर कुकर, बिजली, कृषि, हार्टीकल्चर, पानी गर्म करने, रेफ्रीजरेटर, एयरकण्डीशनर, वेंटिलेटर्स, प्रोसेस हीट आदि के रूप में किया जा सकता है। श्री अरविंद आश्रम के सोलर किचन में प्रयोग में आनेवाला सोलर बाउल प्रसिद्ध है, यह 150.7 डिगरी तापमान तक प्राप्त कर सकता है।

भारत में सौर ऊर्जा के जनक प्रो0 एच0पी0 गर्ग हैं। उन्होंने ही इस प्राकृतिक ऊर्जा को *अक्षय ऊर्जा* नाम दिया। अक्षय ऊर्जा यानि सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, पवन बिजली और बायोगैस। उन्होंने बताया कि हमारे यहाँ सौर ऊर्जा से 5 खरब मेगावाट बिजली पैदा करने की क्षमता है। सौर ऊर्जा का अथाह भण्डार, कुदरत की ओर से धरती को बख्शी गई सबसे बड़ी सौगात है। यदि दुनिया के सिर्फ चार प्रतिशत रेगिस्तानी इलाके में सोलर पैनल का जंगल खड़ा करके संयंत्रों की सहायता से सूरज की ताकत बटोर ली जाये तो इससे पूरी दुनिया में बिजली की मांग को पूरा किया जा सकता है।

गैर-पारम्परिक ऊर्जा संसाधनों में सौर ऊर्जा के बाद पवन ऊर्जा का स्थान है। पवन ऊर्जा से पर्यावरण में व्याप्त भीषण प्रदूषण को रोका जा सकता है। पवन ऊर्जा गलोबल वार्मिंग नहीं बढ़ाती और न ही ग्रीन हाउस गैसों में अभिवृद्धि करती है। 11 मेगावाट पवन टर्बाइन से जितनी ऊर्जा निकलती है, उससे 1500 टन कार्बन डाई ऑक्साइड, 6.5 टन सल्फर डाईऑक्साइड, 3.2 टन नाइट्रोजन ऑक्साइड तथा 60 पौंड पारे की प्रतिवर्ष की उत्सर्जन दर को कम किया जा सकता है। कैलिफोर्निया में विश्व का सबसे बड़ा पवन ऊर्जा का केन्द्र है, वहाँ 490 पवन टर्बाइन हैं जिसकी क्षमता 1320 मेगावाट है। वर्ष 2013 के अंत तक अमेरिका में पवन ऊर्जा का उत्पादन 61108 मेगावाट था। वहाँ पवन ऊर्जा की क्षमता में 29.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हो रही है। पवन ऊर्जा के क्षेत्र में चीन तीव्रता से आगे बढ़ रहा है। इस क्षेत्र में स्पेन ने भी विश्व के लिये एक उदाहरण पेश किया है। पवन ऊर्जा उत्पादन में स्पेन का विश्व में चतुर्थ स्थान है। स्पेन विश्व का एकमात्र ऐसा देश है जहाँ पवन ऊर्जा बिजली आपूर्ति का प्रमुख स्रोत है। पवन ऊर्जा की दृष्टि से ब्रिटेन का विश्व में छठां स्थान है। जनवरी 2014 में ब्रिटेन में 5276 पवन टर्बाइन हैं जिनकी क्षमता 10 गीगावाट से अधिक है। पवन ऊर्जा वहाँ पर अधिक प्राप्त करने की संभावना होती है, जहाँ पर पवन की गति 160 किलोमीटर प्रति घंटा होती है। यह वेग ऊँचे क्षितिज पर या समुद्र किनारे पाया जाता है।

बायोमॉस भी अपारंपरिक ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण साधन है। यह जैविक पदार्थों या हाल ही में मृत जीवों से प्राप्त किया जाता है। इसके लिये पेड़-पौधों का भी उपयोग किया जाता है, जैसे मिस्कान्यस, स्वीचग्रास, हेम्प, मक्का, पोपलर, विलो, गन्ना, ताड़ के पेड़ आदि। बायोमॉस में कार्बन नहीं होता और ये जलने पर कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जित नहीं करते। अमेरिका में बायोमॉस से लगभग 1700 मेगावाट बिजली का उत्पादन होता है। वहाँ पर गन्ने के सूखे रेशे एवं लकड़ी के अवशिष्ट पदार्थों से 40000 घरों को बिजली मिलती है और इससे 110 लाख टन कार्बन डाई ऑक्साइड के उत्सर्जन में कमी आती है। भारत में बायोमॉस द्वारा ऊर्जा उत्पादन की क्षमता लगभग 19500 मेगावाट है। देश के पहले बायोमॉस संयंत्र की स्थापना मध्य प्रदेश के बैतूल जिले के कसई गांव में की गई है।

बायोगैस भी अपारम्पिरिक ऊर्जा का कभी न समाप्त होने वाला प्राकृतिक स्रोत है। देश में उपलब्ध पशुओं से प्राप्त गोबर से देश में एक करोड़ बीस लाख पचास हजार बायोगैस संयंत्रों का संचालन किया जा सकता है और इससे प्राप्त विद्युत हमें आत्मनिर्भर कर सकती है। स्वीडन में यातायात, ऑटोमोबाइल में बायोगैस का प्रयोग होता है। वहाँ वर्ष

2005 से बायोगैस ट्रेन चलती है, जिसका नाम है "The Biogas Train Amanda" यूरोप में जर्मनी बायोगैस का सबसे बड़ा उत्पादक है। वर्ष 2010 में वहाँ 5905 बायोगैस प्लांट कार्य कर रहे थे।

इसके अतिरिक्त समुद्री ऊर्जा विभिन्न रूपों में उपलब्ध है। जिसमें समुद्री लहरें, समुद्री ताप ऊर्जा में परिवर्तन, ज्वार भाटा प्रमुख है। तूफानी समुद्री लहरें 15 मीटर तक ऊँची होती हैं और इसकी अवधि 15 सेकेंड होती है। इन लहरों में लगभग 3.2 मेगावाट प्रतिमीटर शक्ति होती है। सामान्य स्थिति में लहरें तीन मीटर की होती हैं और इनकी अवधि आठ सेकेंड की होती है। इनमें प्रतिमीटर 70 किलोवाट ऊर्जा विद्यमान होती है। पुर्तगाल में ऐगाकुदारा वेग पार्क विश्व का सर्वप्रथम उद्यम है, जो समुद्री लहरों से 2.25 मेगावाट बिजली निकालता है। इसी तरह के प्रयास में स्कॉटलैंड में विश्व का सबसे बड़ा संयंत्र लगाया गया है। आंकड़ों के अनुसार विश्व में 15000 किलोमीटर समुद्र तट है, जिससे आसानी से बिजली निकाली जा सकती है।

इसी प्रकार धरती के अंदर जितना भूताप है, जितनी ऊष्मा है, इससे तो सारी धरती को वर्षों तक बिजली की आपूर्ति की जा सकती है। इसे जिओथर्मल कहते हैं। मीठा जल जब धरती के नीचे से प्रस्तर से टकराता है तो भी ऊर्जा पैदा होती है, इसे जिओथर्मल डिसेलिनेशन कहते है। जिओथर्मल हिटिंग में धरती के नीचे के ताप को गरम एवं ठण्डा किया जाता है। प्राकृतिक ढंग से जब धरती के अंदर से विद्युत ऊर्जा निकलती है तो उसे जिओथर्मल पावर कहते हैं।

वैकल्पिक ऊर्जा की खोज में एक अद्‌भुत प्रयोग हुआ है। यह प्रयोग है, धान के भूसे से बिजली पैदा करना। इस तकनीक से बिहार के कई गांवों रोशन हो रहें हैं। इसके साथ ही बिस्किट फैक्टरी व कोल्ड स्टोरेज भी संचालित किये जा रहे हैं। पूर्वी चम्पारण जिले के तुरकौलिया में *हास्क पावर सिस्टम* से 32000 वाट बिजली उत्पादन हो रहा है। इससे सम्बन्धित प्रोजेक्ट कार्यरत हैं। 500 किलोग्राम भूसे से 32000 वाट तक बिजली पैदा की जा सकती है। पंचतत्वों से विनिर्मित इस स्रष्टि में किसी चीज की कोई कमी नहीं है। सभी यहाँ पर पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। ऊर्जा संकट से जूझने के लिये ऐसी तकनीक विकसित करने की आवश्यकता है, जो ऊर्जा की आवश्यकता की पूर्ति करने के साथ पर्यावरण को भी सुरक्षित रखे।

संदर्भ स्रोत

अखण्ड ज्योति, जून 2010-सितम्बर 2011
इण्टरनेशनल एनर्जी ऐजेंसी कमीशन, की रिपोर्ट
Economic Times
Federal Energy Commission (FERC) की रिपोर्ट
US EIA (Energy Information Administration) की रिपोर्ट
en.wikipedia.org.

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) 8,54-57
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 18 सितम्बर 2014

सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 का विभिन्न शासकीय विभागों में प्रभाव का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. प्रमोद यादव* एवं भूपेन्द्र कुमार**

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 का विभिन्न शासकीय विभागों में प्रभाव का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखक *प्रमोद यादव एवं भूपेन्द्र कुमार* घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में सूचना के अधिकार अधिनियम 2005 का विभिन्न शासकीय विभागों में प्रभाव का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है, जिससे यह ज्ञात होता है कि यह अधिनियम अपने उद्देश्यों को पूरा करने में कितना प्रभावी है तथा शासकीय विभागों में इसे और अधिक प्रभावी बनाने के लिए क्या प्रयास किये जा सकते हैं। यह अधिनियम शासकीय विभागों को पहले से अधिक जवाबदेही, पारदर्शिता, निष्पक्षता, क्रियाशीलता, जागरूकता आदि की दिशा में सक्रिय करता है।

प्रस्तावना

सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 वास्तव में एक ऐतिहासिक विधान है, यह एक ऐसा व्यापक कानून है, जो सभी सरकारी व सूचना अधिकार अधिनियम में आने वाले उन अन्य उपक्रमों का जो सूचना अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत आते हैं, के अधिकारियों व उपक्रमों से सूचना प्राप्त करने के लिए नागरिकों को वैधानिक अधिकार प्रदान करता है। सूचना अधिकार अधिनियम ने बहुत से लोगों के मन में आशा के अंकुर उगाए हैं और इसे सही ढंग से काम में लाना ही अब आगे का काम है। इसके प्रचलन से कार्य के संपादन में पारदर्शिता अधिकाधिक बढ़ेगी तथा भ्रष्टाचार व अनियमितता में भी कमी आयेगी। प्रारंभिक मनाही के बाद आखिरकार केन्द्र सरकार को भी यह स्वीकार करने के लिए बाध्य होना ही पड़ा कि सरकारी फाईलों पर अधिकारियों द्वारा की गई नोटिंग का विवरण आवेदक को दिया जाएगा।

* सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, एस. आर. सी. एस. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय दुर्ग (छ.ग.) भारत
** शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, एस. आर. सी. एस. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय दुर्ग (छ.ग.) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन हेतु निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किया गया है :

1. उत्तदाताओं की सामाजिक एवं वर्गवार स्थिति को ज्ञात किया गया।
2. अध्ययन क्षेत्र में सूचना के अधिकार अधिनियम के प्रति जनता में जनजागरूकता आई है।
3. उत्तरदाताओं के द्वारा सूचना के अधिकार अधिनियम के प्रयोग संबंधी जानकारी एकत्र कर उसका विश्लेषण किया गया है।
4. सूचना का अधिकार अधिनियम की प्रभाविता बढ़ गई है।
5. सूचना का अधिकार अधिनियम में शासन और नागरिकों के बीच के संबंधों को पुनः परिभाषित किया गया है।

परिकल्पनाएँ

प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन हेतु निम्नांकित परिकल्पना निर्धारित किये गये हैं :

1. निरक्षर लोगों की तुलना में साक्षर लोग सूचना के अधिकार का अधिक उपयोग कर रहे हैं।
2. सूचना के अधिकार अधिनियम शासकीय नौकरशाहों को परेशान करने की दृष्टि से भी किये गये हैं।
3. सूचना के अधिकार अधिनियम निर्धन और जरूरतमंद लोगों के लिए कारगर सिद्ध हो रहे हैं।
4. यह संभव है कि इस अधिनियम की आड़ में कुछ लोगों के द्वारा ब्लैकमेलिंग से आय का जरिया भी बना लिया गया है।
5. सूचना का अधिकार सरकार और नागरिकों के बीच के पुनः परिभाषित संबंधों में कारगर सिद्ध हो रहा है।

अध्ययन पद्धतियाँ

प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन पद्धति को मुख्यतः तीन भागों में विभक्त किया गया है, जिसके अंतर्गत (1) अध्ययन क्षेत्र (2) अध्ययन क्षेत्र का चुनाव एवं (3) तथ्यों का संकलन एवं प्रस्तुतीकरण।

अध्ययन हेतु दुर्ग जिले के अंतर्गत आने वाले विभिन्न शासकीय विभागों के चयनित 150 उत्तरदाताओं से प्रश्नावली के माध्यम से तथ्यों का संकलन किया गया है। आवश्यकतानुसार साक्षात्कार एवं अवलोकन के माध्यम से भी इस विषय से संबंधित जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। तथ्य संकलन हेतु उपकरण के रूप में साक्षात्कार-अनुसूची का निर्माण किया गया था।

अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तुत शोध पत्र का अध्ययन क्षेत्र छत्तीसगढ़ राज्य के 27 जिलों में से दुर्ग जिले के अंतर्गत आने वाले विभिन्न शासकीय विभागों को निर्धारित किया गया है, क्योंकि शोध-पत्र के अध्ययन का मुख्य केन्द्रबिन्दु शासकीय विभागों में सूचना के अधिकार अधिनियम 2005 के प्रभाव का अध्ययन कर विश्लेषण करना है। अध्ययन क्षेत्र में संचालित विभिन्न शासकीय विभाग इस प्रकार है- 1. सामान्य प्रशासन विभाग एवं जन शिकायत विभाग (जिला कार्यालय), 2. परिवहन विभाग, 3. जेल विभाग, 4. पुलिस विभाग, 5. राजस्व एवं पुनर्वास विभाग, 6. लोक स्वास्थ्य एवं यांत्रिकी विभाग, 7. वन विभाग, 8. जिला कोषालय, 9. वाणिज्य कर, 10. योजना, आर्थिक एवं सांख्यिकी विभाग, 11. वाणिज्य, उद्योग, सार्वजनिक उपक्रम विभाग, 12. पंचायत एवं ग्रामीण विकास विभाग, 13. जल संसाधन विभाग, 14. कृषि विभाग, 15. पशुपालन विभाग, 17. मत्स्यपालन विभाग, 18. ऊर्जा विभाग, 19. स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, 20. लोक निर्माण विभाग, 21. वन विभाग, 22. खनिज संसाधन विभाग, 23. खाद्य नागरिक आपूर्ति एवं उपभोक्ता संरक्षण विभाग, 24. श्रम विभाग, 25. जिला रोजगार एवं स्वरोजगार मार्गदर्शन केन्द्र, 26. स्कूल शिक्षा विभाग, 27. समाज कल्याण विभाग, 28. आदिम जाति एवं अनुसूचित जाति विभाग, 29. जनसम्पर्क विभाग, 30. सहकारिता विभाग, 31. नगरीय निकाय, 32. खेल एवं युवा कल्याण, 33. भू-अभिलेख कार्यालय, नजूल विभाग, 34. तहसील

कार्यालय, 35. शहरी विकास प्राधिकरण, 36. आबकारी विभाग, 37. जिला पंजीयक कार्यालय, 38. जिला अन्ताव्यवसायी वित्त विकास निगम, 39 छत्तीसगढ़ हाऊसिंग बोर्ड, 40. महिला एवं बाल विकास विभाग।

प्रमुख निष्कर्ष

अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि अध्ययगत उत्तरदाताओं में 86.77 प्रतिशत उत्तरदाताओं को सूचना के अधिकार के संबंध में जानकारी है, जबकि 12.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं को अभी भी इस अधिनियम के विषय में पूर्ण जानकारी नहीं है। अध्ययनगत उत्तरदाताओं में 80 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना कि सूचना के अधिकार अधिनियम 2005 से आम नागरिकों को अपने मौलिक अधिकार के संरक्षण में सहायता प्राप्त हो रही है, जबकि 12.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपना मत व्यक्त किया कि सूचना के अधिकार अधिनियम से संरक्षण प्राप्त नहीं हो रहा है, वहीं 4.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने तटस्थता बनाये रखा और 3 प्रतिशत उत्तरदाताओं को प्रश्न समझ में ही नहीं आया। उत्तर समझ में नहीं आने का मुख्य कारण उनको इस अधिनियम को प्रभावी करने का उद्देश्य ज्ञात न होना है।

अध्ययनगत उत्तरदाताओं के व्यवहार परिवर्तन संबंधी अध्ययन में 88 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना कि इस अधिनियम के लागू होने से शासकीय अधिकारियों के व्यवहार में परिवर्तन आया है। उनमें जवाबदेही, जागरूकता एवं पारदर्शिता के प्रति पहले से अधिक गम्भीरता दिखाई दी है। जबकि 7 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने मत व्यक्त किया कि इनके व्यवहार में परिवर्तन नहीं आया है व 5 प्रतिशत उत्तरदाता ने इस प्रश्न पर कोई स्पष्ट मत नहीं दिया।

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि विभागीय जनसूचना अधिकारियों को इस अधिनियम की बहुत से नियमों की जानकारी है, परन्तु अभी भी कुछ नियमों के प्रति उनमें जानकारी का अभाव है तथा कुछ नियमों के प्रति इनमें भ्रांतियाँ है, जिसके लिए समय-समय पर विभागीय प्रशिक्षण, सेमीनार, कार्यशाला जैसे कार्यक्रम चलाये जाने की आवश्यकता है।

प्रमुख सुझाव

1. समस्त सरकारी संस्थान सूचना प्रकाशित करेंगे, जो इस रूप में हो ताकि जन साधारण को आसानी से उपलब्ध हो। कार्यों का निर्वहन करने के लिए बनाये गये मापदण्ड, कार्यों को पूरा करने के लिए कर्मचारियों द्वारा प्रयोग किये जाने वाले नियम, विनियम, निर्देश, रिकार्ड, उसके अधीन रखे हुए दस्तावेजों का वर्गीकरण किया जाये।
2. ऐसी किसी भी व्यवस्था की मौजूदगी का पूरा ब्यौरा, जो नीतियॉ बनाने और उन्हें लागू करने के लिए जनता के प्रतिनिधियों की राय लेने के बारे में या समाज के सदस्यों को प्रतिनिधित्व देने के बारे में हो।
3. संगठन, संस्था, कार्यालय द्वारा गठित ऐसे बोर्ड, परिषदों, समितियों और अन्य निकायों के विवरण की घोषणा, जिसमें दो या उससे ज्यादा व्यक्ति हों, साथ ही यह सूचना की इनकी बैठकें जनता के लिए खुली हुई है या नहीं और इन बैठकों में हुई कार्यवाही का ब्यौरा जनता को दिया जा सकता है या नहीं।

अतः आज आवश्यकता है पारदर्शिता, संवेदनशीलता, जवाबदेही, शीघ्रता, सरलता, ईमानदारी की न कि नए नियम कानूनों की सूचना का अधिकार तभी सफल होगा जब प्रशासन तंत्र जन-प्रतिनिधि एवं आम नागरिक इसके लिए तैयार होगा और दृढ़ता से निर्णय लेगा। अंत में कहा जा सकता है कि सूचना का अधिकार अधिनियम को पूर्ण रूपेण प्रभावी बनाने के लिए तीनों सम्बद्ध भागों, जनता, लोकप्राधिकारियों तथा सूचना आयोगों को क्रियाशील तथा अपनी-अपनी भूमिका का निर्वाह करना पड़ेगा, परन्तु सबसे अधिक आवश्यक है, सर्वोत्तम नेतृत्व की प्रतिबद्धता और वह यह है कि सूचना के अधिकार अधिनियम को शब्दों तथा आत्मा दोनों में वास्तविक बनाना।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

अग्रवाल, राकेश -हैण्डबुक, राइट टू इन्फॉरमेशन, न्यायभूमि, नई दिल्ली, 2000 पृष्ठ संख्या 94-95

अफरीदी, फारूख -लोकतंत्र में सूचना का अधिकार, हेरिटेज पब्लिशिंग हाऊस जयपुर, 2006, पृष्ठ संख्या 184-185
अहमद, कमाल, पांडे -सूचना का अधिकार कानून 2005, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 2008, पृष्ठ संख्या 15-16
अरोड़ा, मुकेश अरोड, पूर्णचन्द -राइट टू इन्फॉरमेशन एक्ट, 2005, सिंगला लॉ एजेन्सी, चण्डीगढ़, 2008, पृष्ठ संख्या 54-56
अरोडा, ललित कुमार -राइट टू इन्फॉरमेंशन, ईसा बुक्स दिल्ली 2004, पृष्ठ संख्या 44-45
आचार्य, एन. के. -कमैंट्री ऑन दि राइट टू इन्फॉरमेशन एक्ट 2005, एशिया लॉ हाऊस, हैदराबाद, 2007, पृष्ठ संख्या 35-39
आलम, अफरोज -सूचना का अधिकार, जामिया इस्लामिया हिन्द, जामिया नगर, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ संख्या 11
कुमार, प्रकाश -सूचना का अधिकार, प्रभात पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ संख्या 25
कुमार, नीरज -जानिए अपना सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005,जैन बुक एजेन्सी, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ संख्या 45
कुमार, नीरज -ट्रैटीज आफन राइट टू इन्फॉरमेशन एक्ट 2005, भारत लॉ हाऊस, 2009, पृष्ठ संख्या 80
कृष्ण अय्यर, बी.आर. -फ्रीडम ऑफ इन्फॉरमेशन, ईस्टर्न बुक कम्पनी, लखनऊ, 1990, पृष्ठ संख्या 51
जिला सांख्यिकी कार्यालय, दुर्ग, वार्षिक रिपोर्ट, 2005-2014

लेखकों के लिए निर्देश

शोधपत्र का अनुरोध

लेखक अपना शोधपत्र डॉ. मनीषा शुक्ला ,प्रधान सम्पादिका आन्वीक्षिकी भारतीय शोध पत्रिका को ई-मेल पर प्रेषित करें। (maneeshashukla76@rediffmail.com)

प्राप्त शोधपत्र पत्रिका में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोधपत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोधपत्र का कोई भी भाग प्रधान सम्पादिका के अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है। कृपया अपने शोधपत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें,शीर्षक ;सारांश ;पाण्डुलिपि ;पुस्तक संदर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु अपना नाम पता पाण्डुलिपि पर न दें।

शीर्षक :शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें,किन्तु अपना पूरा नाम,पता,संस्था जहाँ पर अध्ययन अथवा अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका विषय,दूरभाष अथवा मोबाइल,फैक्स,ई-मेल पत्राचार हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें। उपर्युक्त तथ्य आपके शोधपत्र के शब्द सीमा के अन्तर्गत ही माना जायेगा।

सारांश :कृपया शोधपत्र का सारांश 120 शब्दों में दें।

पाण्डुलिपि :इसके अन्तर्गत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी ; जो 5 से 10 पृष्ठ तक होनी चाहिये। शोधपत्र 10 पृष्ठ से (सारांश,शब्द संक्षेप,संदर्भ सूची समेत)अधिक प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। अन्यथा वृहद् शोधपत्र(10 पृष्ठ से अधिक) प्रकाशन में देर भी हो सकती है। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि शोधपत्र पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। शोधपत्र प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने इसका पूरा ध्यान रखा जाता है फिर भी कोई त्रुटि पाये जाने पर लेखक संशोधित रीप्रिंट प्राप्त कर सकता है ; पत्रिका में संशोधन की व्यवस्था नहीं है।

सन्दर्भ वर्णमालाक्रमानुसार :शोधपत्र के समापन पर कृपया संदर्भ वर्णमाला क्रमानुसार दें। पत्रिका का वर्ष,लेखक, पृष्ठ संख्या,भाग इत्यादि विस्तार से दें। पुस्तक शीर्षक या पत्रिका शीर्षक इटालिक दें।

पुस्तक :प्रकाशक का नाम,संस्करण संख्या,प्रकाशन वर्ष,लेखक का नाम,पुस्तक का नाम,पृष्ठ संख्या

पत्रिका :पत्रिका का नाम,लेख का शीर्षक,लेखक का नाम,प्रकाशक का नाम,अंक संख्या/माह,वार्षिक अथवा अर्द्धवार्षिक अथवा मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

समाचार पत्र :प्रकाशक,तिथि,सन् ,पृष्ठ संख्या,

इण्टरनेट :वेबसाइड,पृष्ठ संख्या,मुख्य शीर्षक,अन्त: शीर्षक।

मानचित्र एवं सारणी :मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोधपत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में दें(उदाहरण सारणी संख्या 1)

विशेष :कृपया अपना शोधपत्र ई-मेल करने के बाद डॉक से अवश्य भेजें। अपने शोधपत्र के साथ-साथ अपना वायोडाटा, फोटो,स्वपता लिखा लिफाफा(25 रू के टिकट सहित)भेजें। शोधपत्र यदि हिन्दी भाषा में है तो ए.पी.एस प्रियंका रोमन(ए.पी.एस. कार्पोरेट 2000++)में तैयार सी.डी के साथ दें। शोधपत्र प्राप्त होने के एक सप्ताह के अन्दर लेखक को स्वीकृति पत्र प्रेषित कर दिया जायेगा। ई-मेल से प्राप्त शोधपत्र हेतु ई-मेल से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोधपत्र प्रेषित करने के पूर्व प्रधान सम्पादिका से दूरभाष पर अवश्य सम्पर्क करें। सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति में सम्मिलित करने का अंतिम निर्णय संस्था का होगा।

सदस्यों से निवेदन है कि वर्ष में 20 सदस्य पत्रिका से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।